खण्ड

1

अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण

इकाई 1

संस्कृति एवं सम्प्रेषण 9

इकाई 2

अन्तःसांस्कृतिक एवं अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण 20

इकाई 3

भाषा एवं सम्प्रेषण व्यवहार 31

खण्ड 1 का परिचय

एम.ए. अनुवाद अध्ययन कार्यक्रम के अनुवाद एवं अन्तर्सांस्कृतिक पाठ्यक्रम (एम.टी.टी. 018) का पहला खण्ड **अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण** से सम्बन्धित है। जैसा कि हम जानते हैं कि अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण से तात्पर्य विभिन्न संस्कृतियों के बीच सम्प्रेषण से है। किसी भी संस्कृति के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि उसका समय समय पर अन्य संस्कृतियों से संवाद हो। संवाद के अभाव में संस्कृति एक सीमा में कैद हो कर रह जाएगी। परिणामस्वरूप उस संस्कृति का पतन भी हो सकता है। अनुवाद इस अन्तर्सांस्कृतिक संवाद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद के लिए एक सेतु के रूप में कार्य करता है।

इस खण्ड में कुल तीन इकाइयां हैं:

इकाई 1 का शीर्षक **संस्कृति एवं सम्प्रेषण : एक परिचय** है। इस इकाई विशेष में संस्कृति एवं सम्प्रेषण की सम्पूर्ण अवधारणा पर विस्तार से बात की गई है। इस इकाई के अन्तर्गत भाषा एवं सम्प्रेषण पर बात करते हुए संस्कृति एवं सम्प्रेषण के बीच सम्बन्ध की ओर भी संकेत किया गया है। साथ ही, अनुवाद के लिए संस्कृति तथा सम्प्रेषण को समझने की क्या आवश्यकता है, इस पक्ष पर भी बात की गई है।

इकाई 2 का शीर्षक **अन्तःसांस्कृतिक एवं अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण** है। संस्कृति एवं सम्प्रेषण पर पिछली इकाई में बात करने के पश्चात् इस इकाई में अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण और अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण के बीच के अन्तर को विस्तार से समझाया गया है तथा इसमें यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि अनुवाद केवल अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण के लिए ही नहीं अपितु अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण के लिए भी उतना ही आवश्यक है। ऐसा सोचा जा सकता है कि अन्तःसांस्कृतिक अर्थात् एक ही संस्कृति के भीतर संवाद के लिए अनुवाद जैसे सेतु की क्या आवश्यकता हो सकती है। वास्तव में एक ही संस्कृति में रहकर भी उनमें जाति, धर्म, विचार, आस्था आदि के आधार पर भेद हो सकते हैं जिन्हें स्पष्ट करने के लिए अनुवाद एक जरूरी माध्यम है।

इकाई 3 **भाषा एवं सम्प्रेषण व्यवहार** से सम्बन्धित है। प्रस्तुत इकाई में भाषा एवं सम्प्रेषण व्यवहार के विभिन्न आयामों को बहुत ही विस्तार एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से समझाया गया है। इस इकाई के अन्तर्गत भाषा का हमारी संस्कृति से क्या सम्बन्ध है, इस पर बात करते हुए सम्प्रेषण व्यवस्था में भाषा की भूमिका, तकनीकी की भूमिका तथा भाषा एवं सम्प्रेषण व्यवहार के आपसी सम्बन्ध पर गहनता से चर्चा की गई है। साथ ही पाठ्यक्रम की मांग को ध्यान में रखते हुए अनुवाद एवं सम्प्रेषण व्यवहार के सम्बन्ध पर भी प्रकाश डाला गया है।

इकाई 1 संस्कृति एवं सम्प्रेषण : एक परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सम्प्रेषण एवं उसकी विभिन्न परिभाषाएँ

1.2.1 भाषा एवं सम्प्रेषण

1.2.2 संस्कृति, तथा संस्कृति एवं सम्प्रेषण के बीच सम्बन्ध

1.2.3 अनुवाद हेतु संस्कृति तथा सम्प्रेषण को समझने का महत्व

1.3 सारांश

1.4 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.5 शब्द सूची

1.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सम्प्रेषण तथा इसके विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे;
- भाषा एवं सम्प्रेषण के अन्तःसम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे;
- संस्कृति की अवधारणा तथा उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे;
- संस्कृति एवं सम्प्रेषण के जटिल सम्बन्ध को पहचान सकेंगे; और
- अनुवाद कार्य में संस्कृति एवं सम्प्रेषण का महत्व समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में सम्प्रेषण सम्पूर्ण मानव समुदाय में अपने जुड़वां 'सूचना' के साथ व्याप्त है। आज के दौर में यह कदाचित् सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली शब्दावली है। इक्कीसवीं सदी से लेकर आज के जिस दौर में हम जी रहे हैं, यह समय तकनीक से अनिवार्य तौर से सम्बद्ध है। इसकी परिभाषागत विभिन्न अर्थच्छायाओं को समझना तथा संचार एवं संस्कृति के अन्तःसम्बन्धों को समझना आज पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

जब हम अनुवाद के विभिन्न स्तरों को समझने का प्रयास करते हैं, तब ये दोनों शब्द बेहद अर्थवान सिद्ध होते हैं, क्योंकि जब सम्पूर्ण दिशा तकनीक के माध्यम से एक दूसरे से जुड़ने की प्रक्रिया में संलग्न है, तब अनुवाद एक पुल की तरह विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृतियों के बीच भेदों को ढँकने का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

1.2 सम्प्रेषण एवं उसकी विभिन्न परिभाषाएँ

सम्प्रेषण अपने इर्द-गिर्द विभिन्न अनुभवों, कार्य-व्यापारों, घटनाओं के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की तकनीकों को भी ला मिलाता है। इसलिए सरकारी बैठक या संगोष्ठी या सम्मेलन, मेला या जूलूस या सांगीतिक प्रदर्शन, फिल्मोत्सव या नृत्य प्रस्तुति या नाट्य प्रस्तुति सभी सम्प्रेषणपरक घटनाएँ हैं। समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, वीडियो-सभी सम्प्रेषणपरक मीडिया के उदाहरण हैं। दूरभाष यंत्र, मोबाइल, पेजर, कैमरा, ध्वनि संग्राहक, इण्टरनेट आदि सभी सम्प्रेषण तकनीक के उदाहरण हैं तथा पत्रकार, प्रचारदाता, जन-सम्पर्क कर्मी तथा कैमरा संचालकगण तथा समाचार वाचक, उद्घोषक, वीडियो व्यवस्थापकगण आदि सभी संचार व्यवसायी हैं।

हमारा समय सामान्यतः सूचना के युग, सम्प्रेषण युग तथा हाल के दौर में साइबर युग या तंत्र-युग के नाम से जाना जाता है। सम्प्रेषण प्रक्रिया भाषाओं के उद्‌भव, विभिन्न संस्कृतियों में आंगिक भाव प्रदर्शन, संगीत एवं नृत्य के उद्‌भव काल से ही चली आ रही है। परिवहन के साधनों के अभ्युदय से, सम्प्रेषण पद संचरण से सम्बद्ध हो गया। परन्तु, हम संचार के स्वरूप को आरम्भ से समझने का प्रयास करेंगे।

भोजन एवं आश्रय जैसी शारीरिक अवश्यकताओं से परे, मनुष्य के मन में दूसरों से सम्पर्क स्थापित करने की संभवतः कहीं अधिक आकांक्षा होती है। सम्पर्क स्थापन की मनुष्य की यह आकांक्षा बड़ी प्राचीन है तथा वर्तमान सभ्यता में यह जीवित रहने की आवश्यकता बन गई है। अंग्रेजी शब्द कम्यूनिकेशन लैटिन क्रियापद 'कम्यूनिकेअर' से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है – सार्वजनिक करना, बांटना, प्रदान करना, प्रेषित करना। सम्प्रेषण के माध्यम से मनुष्य एक दूसरे के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं तथा स्वयं को एक समूह में एकत्रित करते हैं। इस प्रकार सम्प्रेषण मनुष्यों के बीच सम्पर्क स्थापन की दिशा में आने वाले विभिन्न अवरोधों को समाप्त करता है। इस रूप में ये मनुष्यों के बीच पारस्परिक समझ कायम करने का सशक्त जरिया हैं।

सम्प्रेषण मनुष्य के प्रसंग में सर्वाधिक जटिल प्रक्रियाओं में से एक है। सन् 1950 तक मनोविज्ञान या समाजशास्त्र में इस पर न के बराबर ही चर्चा हुई थी। 1940 के दशक के प्रारम्भ में समाजमनोविज्ञानी वास्तव में समुदाय संचार के महत्व के प्रति जागरूक हो गए। परन्तु, सूचनात्मक सिद्धान्त के सन्दर्भ में सन् 1948 में 'शैनन' के पत्रों के प्रकाशन के पूर्व इस दिशा में न ही प्रयोग हुए और न ऐसे किसी विचार की अभिव्यक्ति।

बर्ट तथा हिक की गणना उन प्रयोक्ताओं में की जाती है, जिन्होंने मनुष्य की समस्याओं के समाधान में सम्प्रेषण की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला। सन् 1950-1955 तक की अवधि के बीच कई प्रयोग हुए, जिनमें से अधिकांशतः तुलनात्मक रूप से इस तथ्य पर केन्द्रित किए गए कि सूचना प्राप्त होने में लगे समय की तुलना में साधारण मनुष्य किसी सूचना को कितने समय में ग्रहण करते हैं। इसी सन्दर्भ में कई शब्दावलियाँ प्रयोग में आईं तथा प्रसिद्ध हो गईं, जैस–कोडिंग (संकेतित करना), डिकोडिंग (विसंकेतित करना), इनपुट (निवेश), नॉइज़ (शोर), डेस्टिनेशन (लक्ष्य), डाटा हैण्डलिंग (आंकड़े प्रयोग करना) तथा इनफॉरमेशन प्रौसेसिंग (सूचनाएँ भरना)।

आज के समय में प्रमुख दृष्टिकोण कार्ल जैस्पर्स जैसे अस्तित्ववादियों का है जिनका मानना यह है कि मनुष्य के अस्तित्व की सार्वभौमिक अवस्था सम्प्रेषण ही है। आगे चलकर, मार्टिन ब्यूबर ने सम्प्रेषण की समस्या को आध्यात्म विज्ञान के सहारे विश्लेषित करने का प्रयास किया। परन्तु, जैस्पर्स तथा ब्यूबर दोनों ने इस बात पर बल दिया है कि संचार के प्रयोग का अर्थ है मानव समुदाय के बीच बातचीत कायम करना, न कि आदेश देना। साथ ही वे इस पारम्परिक अवधारणा का भी खण्डन करते हैं कि सही समझ मात्र वस्तुनिष्ठता से ही अर्जित की जा सकती है। इसके ठीक विपरीत, वे मानते हैं कि समानुभूति तथा आत्मनिष्ठता ही किसी भी संचार क्रिया के खुलने की चाबियाँ हैं। समाज-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत से विचारकों ने सम्प्रेषण तथा संस्कृति को पर्याय माना है। हाल ने अपने शोध में यह प्रस्तावित भी किया है कि – 'सम्प्रेषण संस्कृति है।'

शैनन तथा वीवर ने अपनी परिभाषाओं में इस अवधारणागत ढाँचे को और अधिक व्यापक रूप प्रदान किया है। इन्होंने सम्प्रेषण को अधिक व्यापक ढंग से प्रयुक्त करते हुए उन सभी प्रक्रियाओं को शामिल कर लिया है जिससे एक दिमाग, दूसरे को प्रभावित करता है। कुछ सन्दर्भों में, सम्प्रेषण की और व्यापक परिभाषा को प्रयोग करना दिलचस्प होगा जिसके अनुसार सम्प्रेषण के अन्तर्गत वे समस्त प्रक्रियाएँ आ जाती हैं जिससे एक कार्यकलाप दूसरे को प्रभावित करता है।

सम्प्रेषणगत स्थिति के, (लोगों को एक दूसरे के मुखातिब करने के) गुणधर्म के मद्देनज़र चार्ल्स मॉरिस ने संचार प्रक्रिया को इस तरह परिभाषित किया है- 'सम्प्रेषण शब्द अपने व्यापक प्रयोग में, वैसे किसी भी दृष्टांत को शामिल कर लेता है, जिसमें सामान्यीकरण को स्थापित करने की बात की गई हो, अर्थात् विभिन्न वस्तुओं के बीच कुछ प्रवृत्तियों का साम्य रेखांकित करना।'

ल्यूंडबर्ग ने संचार को परिभाषित करते हुए कुछ प्रतीकों और चिह्नों के प्रयोग को आवश्यक समझा है। उन्होंने परस्पर क्रिया को प्रतीकों तथा चिह्नों द्वारा निर्दिष्ट करने हेतु सम्प्रेषण का प्रयोग किया है। ये प्रतीक आंगिक

भावाभिव्यक्ति युक्त, चित्रात्मक, लचीले, मौखिक या किसी अन्य स्थिति से हो सकते हैं जो हमारे व्यवहार को उद्दीप्त करने की प्रतिक्रिया प्रदान कर सकें। इस तरह सम्प्रेषण एक तरह की पारस्परिक क्रिया है जो प्रतीकों के सहारे घटित होता है। ल्यूंडबर्ग ने सम्प्रेषण एवं महज सम्पर्क के बीच विभेद किया है। वे कहते हैं- वास्तविक सामाजिक सम्प्रेषण के अन्तर्गत वह प्रक्रिया आती है जिसमें प्रतीकों के प्रयोग में अस्थायी तौर पर स्वयं का किसी अन्य के साथ तारतम्य स्थापित किया जाता है। यही संचार की आधारभूत प्रक्रिया है।

सम्प्रेषण चक्र न केवल ऐतहासिक तौर पर चला आ रहा है बल्कि वह सहकालिक तौर से अन्य विचार भूमियों के बीच व्याप्त होता हुआ भी दृष्टिगत होता है। तकनीकवादी इस बात को रेखांकित करने में व्यस्त हैं कि उसकी शिल्पकला ने संचार के माध्यम को तारयंत्र तथा टेलीविज़न से उपग्रह व इण्टरनेट तक पहुँचा दिया तथा इतिहासकार, संचार, तकनीक तथा सामाजिक बदलाव के बीच सामान्य सम्बन्ध स्वीकारने के लिए विवश हैं।

पत्रकारिता, वक्तव्य कला तथा समाज विज्ञान ने सम्प्रेषण प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुछ ऐसे दृष्टिकोण प्रतिपादित किए हैं, जिससे इस दिशा में मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र की पारम्परिक रेखाएँ समाप्त हो गई हैं।

सम्प्रेषण अपने सबसे सरल भाव के अनुसार वह मानवीय सम्बन्ध है जिसमें दो या दो से अधिक मनुष्यों के बीच विचारों के आदान-प्रदान, बातचीत, एकत्रित होना या किसी उत्सव या शोक सभा में साथ-साथ रहना शामिल है। इस तरह सम्प्रेषण उस तरह कोई क्रिया या प्रक्रिया नहीं बल्कि सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकात्म है। स्वयं से, परमात्मा से, प्रकृति से, अलौकिक संसार से तथा स्वयं के पूर्वजों से एकात्मक आदि भी सम्प्रेषण के ही विभिन्न प्रकार हैं। सम्प्रेषण स्वयं के भीतर भी घटित होता है।

सम्प्रेषण उन अनगिनत पद्धतियों का नाम है, जिससे मनुष्यों को आपसी सम्पर्क में रहने का अवसर प्राप्त होता है। न सिर्फ शब्दों और संगीत, चित्र और लिपि, सहमति और इश्तहारों, इश्तहार और चिह्नों बल्कि हर वह हरकत जो किसी की दृष्टि आकर्षित करती हो और हर वह ध्वनि जो दूसरों के कानों में स्पंदन उत्पन्न करती हो (मॉन्टेग तथा मैटसन)।

अब हम सम्प्रेषण की भारतीय अवधारणा पर विचार करेंगे। यह शब्द भरत मुनि के नाट्य शास्त्र से उद्धृत हुआ है। संस्कृत शब्द 'साधारणीकरण', सामान्य या सामान्यीकरण की अवधारणा के बहुत निकट आ जाता है जो कि साधारणतः सम्प्रेषण के साथ जोड़कर चिह्नित किए जाते हैं।

साधारणीकरण वह सामाजिक प्रक्रिया है जो कि मात्र सहृदयों द्वारा ही अर्जित की जा सकती है। सहृदय का तात्पर्य उन सामाजिकों से है जो सामाजिक सन्दर्भों को हृदय से तदाकार कर सकें। यह एक अन्तर्जात कौशल है, जिसे संस्कृति, ग्रहणशीलता तथा अध्ययन से अर्जित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत की अवधारणाा के अनुसार सम्प्रेषण वह सम्बन्ध है जो सामान्य एवं आपसी समझौते तथा भाव व्यापार पर आश्रित है। सहृदय का शाब्दिक अर्थ उस दशा से है जब किसी सामाजिक का मन अपने-पराए की सम्बन्ध भावना से मुक्त होकर लोक सामान्य भाव भूमि पर स्थित हो जाता है।

इस तरह, सम्प्रेषण प्रारम्भतया सहृदयों के बीच आपज6सी आदान-प्रदान युक्त प्रतीकात्मक वातावरण तथा एक सामाजिक सम्बन्ध को अभिव्यक्त करता है। यह एक सामाजिक सम्प्रेषण तथा कई अन्य कारकों की दिशा में अग्रसर करता है, जिससे कि एकात्मकता की धारणा पुष्ट होती है। सम्प्रेषण की इस प्रक्रिया को दो भागों में बांटा जा सकता है- मस्तिष्क के भीतर घटित होने वाला संचार सम्प्रेषण तथा अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण ।

मस्तिष्क के भीतर घटित होने वाली सम्प्रेषण प्रक्रिया (इण्ट्रापर्सनल कम्युनिकेशन) एक व्यक्तिगत प्रतिबिम्बन, गंभीर चिन्तन तथा विचार प्रक्रिया है जो मनुष्य स्वयं के भीतर महसूस करते हैं। अलौकिक शक्तियों, दिव्यता तथा अलौकिकता से मुखातिब होना वैयक्तिक पहचान की चेतना से परे का सम्प्रेषण कहलाता है। अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण सीधे दो या दो से अधिक लोक समूहों से रू-ब-रू (मुखातिब) होना है। आजकल इस प्रकार का सम्प्रेषण तकनीक के माध्यम से दूरभाष यंत्र तथा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से भी घटित होता है।

अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण सीधे, एक दूसरे से मुखातिब एवं घनिष्ठ संचार प्रक्रिया है। यह शब्दों एवं हाव-भाव तथा अधिकतम सम्प्रेषण के विनिमय की अनुमति देता है। ऐसी स्थिति में किसी मशीन अथवा यंत्र का हस्तक्षेप अनावश्यक लग सकता है, परन्तु आज की दुनिया में, दूरभाष यंत्र द्वारा वार्तालाप या दो व्यक्तियों के बीच वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग (ऐसी व्यवस्था जिसमें टेलीविज़न से दूरभाष यंत्र को जोड़कर विभिन्न स्थलों पर विद्यमान लोगों के बीच दृश्य एवं ध्वनि के माध्यम से संचार प्रक्रिया घटित होती है)। को भी अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण कहा जाता है।

तत्पश्चात् जनसम्पर्क, समूह सम्प्रेषण तथा व्यावसायिक सम्प्रेषण आता है। ऐसे सभी सम्प्रेषणों में हम संकेन्द्रित और असंकेन्द्रित सम्प्रेषण पाते हैं। सकेन्द्रित सम्प्रेषण में, दो व्यक्ति या व्यक्तियों का एक समूह अथवा एकत्रित कई व्यक्तिगण यह बात स्पष्ट तौर पर समझते हैं कि वे किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर सम्प्रेषण कर रहे हैं तथा वे किस प्रकार की सूचना का आदान-प्रदान कर रहे हैं।

एक असंकेन्द्रित सम्प्रेषण साधारणतया चाक्षुष सम्पर्क से प्रेरित होता है। ऐसे सम्प्रेषण में दो व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह इस बाबत अनिश्चित हो सकते हैं कि वे कैसी सूचना का आदान-प्रदान कर रहे हैं, परन्तु वे सम्प्रेषण करने के इच्छुक होते हैं। ऐसे सम्प्रेषण में, हाव-भाव तथा भंगिमा का महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि भंगिमाओं तथा चाक्षुष सम्पर्क के द्वारा इस बात को स्पष्ट तौर पर समझा जा सकता है कि सामनेवाला/ली सम्प्रेषण हेतु इच्छुक है अथवा नहीं।

1.2.1 भाषा एवं सम्प्रेषण

भाषा के दो मुख्य प्रकार होते हैं जिनके द्वारा हम सम्प्रेषण करते हैं – वाचिक और अवाचिक। अवाचिक सम्प्रेषण शारीरिक हाव-भाव, भंगिमाओं तथा आंखों की सहायता से होता है। विभिन्न संस्कृतियां समय के साथ-साथ अपने भीतर विशेष प्रकार की भाव-भंगिमाओं का विकास कर लेती हैं तथा किसी संस्कृति विशेष के सम्पर्क में आने से बीच-बीच में उनमें बदलाव भी करती रहती हैं। किन्तु जब कोई खास संस्कृति किसी अन्य संस्कृति के सम्पर्क में आती है, तब भी उनकी आधारभूत अवाचिक सम्प्रेषण प्रक्रिया वही रहती है। उदाहरणार्थ, भारतीय जिस प्रकार किसी का स्वागत करते हैं, उस प्रकार से इटली निवासी किसी की विदाई करते हैं। इस प्रकार के बहुतेरे उदाहरण मिलते हैं। उन पर हम सम्प्रेषण, संस्कृति तथा भाषा के जटिल किन्तु घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा के दौरान विचार करेंगे।

मौखिक सम्प्रेषण भाषा के माध्यम से घटित होता है। भाषा मनुष्य एवं समाज के बीच आधारभूत सम्प्रेषण का जरिया है। और (मात्र इसलिए) चूंकि वह आधारभूत रूप या जरिया है, वह सर्वाधिक विकसित भी है। हम किसी भी वास्तविक अर्थ में, भाषा के बगैर सम्प्रेषण स्थापित कर ही नहीं सकते, परन्तु आंगिक हाव-भाव इसके अपवाद हैं। हम कुछ अमौखिक साधनों द्वारा भी सम्प्रेषण करते हैं जैसे – दृश्यगत कलाएँ, चित्रकला, मूर्तिकला तथा नृत्य, परन्तु अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा भाषा के माध्यम से ही अर्जित की जा सकती है। निःसन्देह यह विभिन्न प्रकार के रूपाकार धारण कर सकती है। यह लघु गद्य रचना हो सकती है, यह कविता हो सकती है, या नाट्य रचना हो सकती है, परन्तु यह सभी भाषा के ही रूप हैं, लिखित, मौखिक तथा पाठ्य। इसकी विशेषताओं के मद्देनजर यह भी सोचा जा सकता है कि यह कला अन्य जीवित प्रजातियों में विकसित क्यों नहीं हुई।

भौतिकतावादी विज्ञान न सिर्फ इस बात को समझाने में असमर्थ है कि बोली का विकास किस भाँति हुआ और न ही यह कि इतनी सारी भाषाओं का उद्भव किस प्रकार सम्भव हुआ। भाषा-वैज्ञानिक अनुसंधानों ने तंत्रिका वैज्ञानिक अध्ययनों के समायोजन के साथ यह ज्ञात कर दिया है कि मनुष्य की भाषा, तंत्रिका संरचना तंत्र पर आश्रित होती है, जो कि मानव मस्तिष्क के स्थान विशेष में विद्यमान होते हैं। बाइबिल में इतनी विविधोन्मुखी भाषाओं के उद्भव को, टावर ऑफ बेबेल में उल्लिखित घटना के माध्यम से विश्लेषित किया गया है जो कि जेनेसिस में उद्धृत है।

उक्त ग्रंथ बहुत ही सहज एवं आत्मविश्वास से पूर्ण तरीके से यह प्रतिपादित करता है – '(11:1) जब नोआ और उसके परिवार ने नाव के बाहर कदम रखा तब उन्होंने एक ही भाषा का उच्चारण किया और वही भाषा उनके वंशजों के बीच कालान्तर में विकसित होती गई। जैसे-जैसे आबादी बढ़ती गई, वह प्रकट रूप से एक ही विशेष

भौगोलिक क्षेत्र में सिमट कर रह गई। परिणामतः उसमें बदलाव बहुत ही सूक्ष्म या नाम मात्र दृष्टिगोचर हुए। परन्तु, जब एक पीढ़ी ने ईश्वर की आज्ञा का (इस ग्रह पर तितर-बितर हो जाने की) विद्रोह पूर्ण खण्डन किया, तब प्रभु ने करामाती ढंग से मनुष्य जाति के प्रमुख भाषा परिवारों का आविष्कार किया। इस कार्य ने मनुष्य को इस बाबत प्रोत्साहित किया कि प्रभु की आदिम इच्छा इस पृथ्वी को, आवंटित भाषाओं के आधार पर समूह में बांधकर निवास योग्य बनाने की है। (सी एफ. इसाइया 45 : 18)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भाषा विभिन्न समुदायों के बीच भौगोलिक, जलवायु तथा समाज की मनोवैज्ञानिक संरचना के आधार पर विकसित होती है इसलिए जिस तरह हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि सम्पूर्ण दिशा के मानव समुदायों के बीच संस्कृति या सम्प्रेषण एक समान थे, ठीक उसी प्रकार हम भाषा से भी यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि वह सम्पूर्ण दिशा के मानव समुदाय के बीच एक समान हो। भाषाएँ कुछ निश्चित प्रतीकों, व्याकरण तथा वाक्य-विन्यास के आधार पर विकसित होती हैं, जिनसे वे अर्थवान बन सकें।

भाषा सम्प्रेषण का सर्वाधिक शक्तिशाली माध्यम है। चूंकि यह प्रत्येक समाज तथा समुदाय में भिन्न-भिन्न होती है, तथापि किसी एक खास समाज को जानने-समझने की दिशा में अनुवाद की आवश्यकता होती है। अब चूंकि हम भली-भाँति जानते हैं कि सम्प्रेषण की प्रक्रिया किस प्रकार कार्य करती है तथा किस प्रकार भाषा की उसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है इसलिए अब हमें यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि संस्कृति क्या है एवं सम्प्रेषण और संस्कृति किस प्रकार आपस में जुड़े हुए हैं।

1.2.2 संस्कृति, तथा सम्प्रेषण एवं संस्कृति के बीच सम्बन्ध

संस्कृति शब्द का तात्पर्य है लोकवार्ता, भाषा, नियम, ज्ञान (का जटिल संकलन), अनुष्ठान, आदतें, जीवनशैलियाँ, विचार, मान्यताएँ तथा रीति-रिवाज़ जो आपस में जोड़ने का कार्य करें एवं एक खास समय में, किसी विशेष समूह के लोगों को एक समान पहचान प्रदान करें।

सभी सामाजिक इकाइयाँ अपनी संस्कृति का विकास करती हैं। यहाँ तक कि दो व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों में भी समय की गति के साथ-साथ संस्कृति का विकास होता है। उदाहरणार्थ – दो व्यक्तियों के सम्बन्धों में भी उनका स्वयं का इतिहास, साझा अनुभव, भाषा की प्रकृति आदि होता है। अनुष्ठान, आदतें तथा रीति रिवाज, उस सम्बन्ध को एक विशेष चरित्र प्रदान करते हैं- एक ऐसा चरित्र जो उसे विभिन्न प्रकार से अन्य सम्बन्धों से अलग करता है। उदाहरणों में विशेष तिथियाँ, स्थान, गीत या विशेष अवसर गिने जा सकते हैं, जो मिलकर उन दो व्यक्तियों के लिए एक अद्वितीय तथा महत्वपूर्ण प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करते हैं। समूह भी नियम, अनुष्ठान, प्रथाओं तथा अन्य प्रवृत्तियों से संयुक्त संस्कृति का विकास करते हैं, जो उस सामाजिक इकाई को एक विशेष पहचान प्रदान करती है। जहाँ एक समूह पारम्परिक तौर पर मिलता है, भले ही सम्मिलन समय पर आरम्भ हो या न हो, किन-किन मुद्दों पर चर्चा होती है, किस प्रकार निर्णय लिए जाते हैं, और किस प्रकार समूह का समाजीकरण होता है आदि ये सभी तत्व मिलकर कालान्तर में संस्कृति विशेष को परिभाषित करने तथा अन्य संस्कृतियों से अलगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संगठनों की भी अपनी संस्कृति होती है। प्रायः वे किसी पहनावे की विशिष्टता में, कार्यस्थान, सम्मिलन के तरीकों तथा कार्यक्रम, सोचने समझने के तरीकों तथा उनके द्वारा प्रदत्त दिशा-निर्देश की प्रकृति, नेतृत्व के तरीकों आदि के सन्दर्भ में प्रकट तौर पर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

सर्वाधिक समृद्ध तथा जटिल संस्कृतियाँ वे होती हैं जो किसी समाज या राष्ट्र के साथ जुड़ी होती हैं। 'संस्कृति' शब्द सामान्यतः भाषा एवं भाषा प्रयोग के प्रकारों, अनुष्ठान, विधि-निषेध तथा रीति-रिवाज के लिए प्रयुक्त होता है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय संस्कृति भी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं, चरित्रों, सरकार की सोच, सामाजिक रीति-रिवाजों, पारिवारिक तौर-तरीके, धर्म, आर्थिक दर्शन तथा आचार-व्यवहार, आस्था तथा मूल्य सिद्धान्त, अवधारणा तथा विधि सिद्धान्त आदि घटकों से निर्मित होती हैं।

इस प्रकार, किसी भी सामाजिक इकाई में, चाहे वह रिश्तेदारी हो, समूह हो या संस्था हो, कालान्तर में अपनी एक खास संस्कृति विकसित होती है। यद्यपि प्रत्येक संस्कृति की पारिभाषिक प्रवृत्तियाँ या उसकी प्रवृत्तियों का संयोजन अन्य संस्कृतियों से अनूठा होता है तथापि सभी संस्कृतियों के बीच कुछ समान प्रकार्य भी होते हैं। सम्प्रेषण के

ऐसे तीन प्रकार्य हैं जो कि खासतौर पर सम्प्रेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं – (1) व्यक्तियों को एक दूसरे से जोड़ना (2) समान पहचान का मूलाधार प्रदान करना तथा, (3) सदस्यों के बीच बातचीत तथा सम्पर्क हेतु सन्दर्भ निर्मित करना।

सम्प्रेषण एवं संस्कृति के बीच सम्बन्ध

सम्प्रेषण एवं संस्कृति के बीच सम्बन्ध बहुत ही जटिल एवं घनिष्ठ है। प्रथमतः संस्कृतियों का निर्माण संचार द्वारा होता है। यानी, संचार ही मनुष्यों के बीच सम्प्रेषण का माध्यम है, जिससे सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ चाहे रीति-रिवाज़, भूमिका, नियम, कर्मकाण्ड, विधि हो या अन्य तरीके, आदि निर्मित होते हैं तथा परस्पर आवंटित किए जाते हैं। आपसी सम्बन्धों, समूहों, प्रतिष्ठानों या समाजों के बीच सम्प्रेषण कायम करने के माध्यम से ही संस्कृति का निर्माण नहीं होता है, बल्कि संस्कृतियाँ सामाजिक सम्प्रेषण का नैसर्गिक उपोत्पाद होती हैं। एक अर्थ में, संस्कृतियां सामाजिक सम्प्रेषण का 'अवशिष्ट' होती हैं।

संचार या संचार के माध्यम के बगैर, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को एक लम्बे अर्से तक संरक्षित कर पाना अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना असम्भव है। यह कहा जा सकता है कि संस्कृति की निर्मिति, संरचना, प्रसार तथा अध्ययन सम्प्रेषण द्वारा ही होता है। मामला इसके ठीक विपरीत भी हो सकता है, यानी सम्प्रेषण व्यवहार व्यापक तौर पर संस्कृति के द्वारा ही गढ़े, निर्मित तथा प्रेषित किए जाते हैं।

सम्प्रेषण-संस्कृति के सम्बन्धों के निहितार्थ को समझने हेतु, महज एक संचारगत घटना को ही समझना काफी नहीं बल्कि निरन्तर जारी संचार प्रक्रिया पर ध्यान देना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, तीन व्यक्तियों का एक समूह जब पहले पहल मिलता है, तब वे सदस्यगण अपने साथ पूर्व घटित संचारगत अनुभवों से, (जिन संस्कृतियों का वे हिस्सा हों या रहे हों) अपनी व्यक्तिगत सोच तथा व्यवहारगत तरीका, साथ लेकर आते हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति इस समूह के नए सदस्यों से सम्प्रेषण कायम करते हैं, वे अपने साझे अनुभवों तथा विचार प्रणाली का नया तरीका ईजाद करते हैं।

यदि वह समूह अपना सम्प्रेषण जारी रखे, तो एक विशिष्ट प्रकार का इतिहास, प्रतिमान, प्रथाएँ तथा अनुष्ठान विकसित होते हैं। इनमें से कुछ सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ लगभग स्पष्ट तथा मूर्त होती हैं और जब नए व्यक्ति जुड़ते हैं तब उनका सामना उसमें गतिशील कुछ नियमों से होता है, जिनका पालन करना उन्हें सीखना पड़ता है।

इसके साथ ही समूह से जुड़े नए लोग भी परस्पर कभी सूक्ष्म तो कभी विस्तृत रूप में समूह की सम्प्रेषण पद्धति को प्रभावित करने लगते हैं। इस पारस्परिक रूप में, यह पुनः गढ़ी हुई संस्कृति वर्तमान तथा भविष्य के समूह सदस्यों की सम्प्रेषण क्रिया को आकार प्रदान करती है। यह बात प्रत्येक संस्कृति पर लागू होती है कि सम्प्रेषण संस्कृति को तथा संस्कृति सम्प्रेषण को रूपाकार प्रदान करती है।

संस्कृति की विशेषताएँ

संस्कृतियाँ जटिल एवं बहुआयामी होती हैं। उपर्युक्त विश्लेषण से यह बात साफ है कि संस्कृतियाँ जटिल संरचनाएँ होती हैं जो अपने साथ प्रवृत्तिगत व्यवस्थित क्रम का एक व्यापक समूह वहन करती हैं। सम्बन्धों या समूह की संस्कृतियाँ संगठनों से और खासकर समाजों से अपेक्षाकृत सरल होती हैं। संस्कृति की जटिलता की सामान्य समझ तथा सांस्कृतिक भिन्नताओं को समझने व व्यवहार करने के लिए सामाजिक स्तर पर सम्प्रेषण के महत्व को रेखांकित करने की दिशा में एडवर्ड हॉल (1959, 1979) का महत्वपूर्ण योगदान है।

संस्कृतियाँ आत्मनिष्ठ होती हैं। मनुष्य में स्वयं की संस्कृति के तत्वों को ही तार्किक एवं वास्तविक तौर पर अर्थपूर्ण मान लेने या कल्पित कर लेने की एक प्रवृत्ति होती है। इससे दूसरी संस्कृतियाँ भिन्न नज़र आने लगती हैं, चाहे वह सम्बन्ध हो, समूह हो, संगठन हो या समाज हो। वे भिन्नताएँ अक्सर नकारात्मक और अतार्किक तथा प्रायः निरर्थक मान ली जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति प्रेम सम्बन्ध में लिप्त हो और यह समाज में उसकी गतिविधियों से दिखाई दे तो उसे वे लोग तथा उनका व्यवहार अजीब या कभी-कभी अनुचित भी लग सकता है जिनकी आपसी प्रेम की संस्कृति अपेक्षाकृत संयमी हो, अर्थात जो सम्बन्धों का प्रदर्शन न करें।

वह व्यक्ति शायद सोचने लगता है कि कोई प्रेमी युगल, सार्वजनिक तौर पर परस्पर अपना प्रेम प्रदर्शित क्यों नहीं कर सकता? यहाँ तक कि वह व्यक्ति बहककर इस निष्कर्ष तक भी पहुँच सकता है कि ऐसे संयमित सम्बन्ध में व्यापकता और गहराई का अभाव होता है। यह तथ्य अन्य अनेक अवसरों पर भी लागू होता है। जो व्यक्ति किसी समूह की अनौपचारिक बैठकों का ही अभ्यस्त हो, वह भी यह सोच सकता है कि औपचारिक बैठक के नियमों से जुड़ाव बहुत ही आश्चर्यजनक तथा आडम्बरपूर्ण है।

किसी प्रतिष्ठान में यदि 'सूट' इत्यादि औपचारिक वेष-भूषा धारण करने का ही नियम हो, तो वहां के कर्मचारीगण, उस प्रतिष्ठान के कर्मचारियों को प्रायः दोषदृष्टि से देखने लगते हैं, जहाँ अनौपचारिक पोशाक पहनने का प्रावधान हो। जिस संस्कृति में एक व्यक्ति के एक ही पत्नी रख सकने का नियम हो, वहाँ के व्यक्ति को वह संस्कृति अनुपयुक्त लग सकती है जहाँ बहुपत्नीत्व का प्रचलन हो। संस्कृति के सम्बन्ध में लोगों में 'अन्य' को 'गलत' के समानान्तर मान लेने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, जबकि सभी सांस्कृतिक तत्व अनिवार्य सर्वसम सम्प्रेषण प्रक्रिया के माध्यम से ही सामने आते हैं।

संस्कृतियाँ समय के साथ बदलती हैं। वास्तव में संस्कृतियां सदैव परिवर्तनशील होती हैं, यद्यपि वह बदलाव प्रायः बहुत मंद होता है तथा इंद्रियगम्य नहीं होता। सांस्कृतिक बदलाव को बहुत-सी ताकतें प्रभावित करती हैं। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, संस्कृतियों का सृजन सम्प्रेषण द्वारा ही होता है। इस सम्प्रेषण प्रक्रिया में लिप्त प्रत्येक व्यक्ति अन्य सांस्कृतिक सदस्यताओं से अपने अनुभवों को (भूतपूर्व या वर्तमान) के सामने लेकर आता है।

एक अर्थ में व्यक्तियों के बीच नए सम्बन्धों, समूहों, संगठनों या सभाओं में वैचारिक मुठभेड़ भी एक प्रकार से अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण घटना ही है। तथा ये विभिन्न सांस्कृतिक संघर्ष समयान्तराल के साथ व्यक्ति एवं संस्कृतियों को प्रभावित करते हैं। पर्यटन एवं संचार प्रौद्योगिकियों से सांस्कृतिक सन्दर्भों के संदेश के प्रसार कार्य में बहुत बढ़ोतरी हुई है तथा कुछ रूपों में, संस्कृतियाँ एक दूसरे को सम्प्रेषण के माध्यम से प्रभावित करती हैं। 'मेल्टिंग पॉट', (एक पात्र जिसमें धातु एवं अन्य पदार्थ पिघलाकर मिलाए जाते हैं) 'दिशा समुदाय' तथा 'दिशा ग्राम' जैसे विशेषण अन्तर्सांस्कृतिक प्रभाव तथा बदलाव का ही हाल बयां करते हैं।

संस्कृतियाँ अधिकांशतः अदृश्य होती हैं। संस्कृतियों को निर्धारित करने वालों में से अधिकांश सांस्कृतिक सम्बन्ध, समूह, प्रतिष्ठान तथा सभाएँ उनके सदस्यों को अदृश्य होती हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे हवा उसके माध्यम से सांस लेने वालों के लिए अदृश्य बनी रहती है। भाषा, निःसंदेह दृश्य होती है, जिस प्रकार अभिवाद की परिपाटियाँ प्रतीक, स्थान आदि होते हैं।

वस्तुतः इन प्रतीकों, अभिवादनों तथा स्थानों के विशिष्ट तथा पारिभाषिक अर्थ किसी भी संस्कृति में लोगों को बहुत कम द्रष्टव्य होते हैं। उदाहरणार्थ हम देख सकते हैं कि दो व्यक्ति अभिवादन प्रक्रिया में एक दूसरे को चूमते हैं, परन्तु जब तक उसे उस संस्कृति विशेष की खास जानकारी नहीं होगी, तब तक उनके इस क्रियाकलाप को उनके सांस्कृतिक सम्बन्धों, समूह, संगठन या सभा विशेष के सन्दर्भ में जाँच पाना मुश्किल होगा।

दूसरे शब्दों में, बिना उस संस्कृति की अधिक जानकारी के यह जान पाना मुश्किल होगा कि वह चुम्बन उस संस्कृति की अभिवादन प्रक्रिया का एक सामान्य व्यवहार है। और उस जानकारी से ही यह भी पता चलेगा कि यह अभिवादन प्रक्रिया सिर्फ प्रेमियों या परिवार के सदस्यों तक ही सीमित है या नहीं। दूसरे उदाहरण के तौर पर हम यह देख सकते हैं कि कुछ संस्कृतियों में गोमांस भक्षण बहुत ही उम्दा भोजन माना जाता है। परन्तु, जिन संस्कृतियों में गाय पवित्र एवं पूज्य मानी जाती है वहाँ गोमांस का वह टुकड़ा एकदम भिन्न सांस्कृतिक अर्थ को अभिव्यक्त करेगा।

1.2.3 अनुवाद हेतु संस्कृति तथा सम्प्रेषण को समझने का महत्व

अनुवाद एक ऐसी गतिविधि है जो अपरिहार्य तौर पर, न्यूनतम दो भाषाओं तथा दो सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच घटित होती है। जैसा कि यह कथन स्पष्ट करता है – अनुवादकों को स्थायी तौर पर सदैव स्रोत भाषा पाठ में अभिव्यक्त सांस्कृतिक पक्ष को लक्ष्य भाषा में रूपांतरित करने की निपुणता अर्जित करने की मुश्किलों से जूझना पड़ता है। ये मुश्किलें दो (या दो से अधिक) भाषाओं के बीच भाषा वैज्ञानिक रिक्तता के आधार पर भिन्न-भिन्न

हो सकती है। अनुवादक द्वारा उस रिक्तता के सबंध में छूट गई सूचना प्रदान करना, अनुवाद कार्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

अनुवाद कार्य के सांस्कृतिक निहितार्थ के विभिन्न स्वरूप शब्द भण्डार और वाक्य विन्यास से लेकर किसी भी संस्कृति में विचारधाराओं तथा रहन-सहन के तरीकों तक व्याप्त हो सकते हैं। अनुवादक को उसमें प्रदत्त विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं के महत्व पर भी विचार करना पड़ता है और यह भी निर्धारित करना पड़ता है कि उसे किस सीमा तक उन्हें लक्ष्य भाषा पाठ में अनूदित करना चाहिए।

'संस्कृति' शब्द मानवीय क्रियाकलापों की तीन प्रमुख कोटियों को संबोधित करता है। प्रथम – 'वैयक्तिक', जिसमें मनुष्य वैयक्तिक इकाई के तौर पर सोचते तथा तदनुसार कार्य करते हैं। द्वितीय -'सामूहिकता', जिसमें मनुष्य एक सामाजिक सन्दर्भ में कार्य करते हैं तथा तृतीय -'अभिव्यक्तिपरक' जिसमें समाज स्वयं को अभिव्यक्त करता है।

भाषा एकमात्र ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसके बिना कोई अन्य सामाजिक संस्थान कार्य नहीं कर सकता; इस कारण यह (भाषा) उन तीन महान स्तम्भों का निर्माण करती है जिस पर संस्कृति निर्मित होती है।

अनुवाद, एक भाषा में, किसी एक समुदाय द्वारा अभिव्यक्त विचार को दूसरे समुदाय की तद्वत अभिव्यक्ति के रूप में रूपांतरित करने की प्रक्रिया का नाम है। जिसमें सांस्कृतिक विसंकेतन (de-coding) पुनः संकेतन (re-coding) तथा संकेतन (en-coding) प्रक्रिया शामिल होती है। जैसे विभिन्न संस्कृतियाँ अधिकाधिक रूप में एक दूसरे के व्यापक सम्पर्क में आ रही हैं, ठीक उसी प्रकार महत्वपूर्ण बहुसांस्कृतिक इकाइयों का अपेक्षाकृत विस्तार हो रहा है।

अब प्रश्न यह है कि जब हम किसी पाठ को अन्ततः अनुवाद करने से पहले यदि उसे समझना चाहें तो यह सम्पूर्ण बदलाव हमें किस तरह प्रभावित करते हैं? तब हम सिर्फ एक खास दिक्काल तथा सामाजिक राजनीतिक स्थिति से नहीं जूझ रहे होते हैं, बल्कि उसमें सबसे खास बात उस पाठ का 'सांस्कृतिक' पक्ष है जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। अन्तरण करने की प्रक्रिया, संस्कृतियों के बीच पुनः संकेतन की प्रक्रिया से होकर गुज़रती है। अतः आवश्यक है कि लक्ष्य पाठक की दृष्टि में सम्पूर्ण विश्वसनीय दिखने के लिए लक्ष्य संस्कृति के अनुरूप ही अनुवाद किया जाए।

बहुसांस्कृतिकता जो कि वर्तमान समय की एक नई संघटना है, यहाँ एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है क्योंकि इसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व के अधिकांश लोगों पर ही नहीं बल्कि वर्तमान नई दिशा व्यवस्था से जन्मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर भी पड़ता है। साथ ही, जैसे-जैसे संस्कृति पनपती है तथा उत्तेजक गति से विकसित होने लगती है, वैसे-वैसे राष्ट्र एवं उनकी संस्कृतियाँ एक सम्मिश्रण की प्रक्रिया से गुजरते हैं, जिसका अन्त कहाँ होगा, यह जानना बेहद मुश्किल हो उठता है। आज हम एक नए अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमान की दहलीज़ पर खड़े हैं। सीमाएँ अदृश्य तथा विभेद समाप्त हो रहे हैं। पहले जो गहरी एंव स्पष्ट रेखाएँ विशिष्ट तौर पर द्रष्टव्य होती थीं, वे समय के साथ फीकी एवं धुंधली पड़ चुकी हैं।

अनुवादक के तौर पर हमें एक भिन्न संस्कृति से मुखातिब होना पड़ता है और उसकी यह माँग होती है कि उसका संदेश दूसरी भाषा एवं संस्कृति में जाते हुए अजनबी न लगे। वह संस्कृति अपनी मान्यताओं को सांस्कृतिक रूप से आबद्ध घोषित करती है, जिसमें उनके द्वारा प्रयुक्त सांस्कृतिक शब्द, कहावतें तथा मुहावरेदार अभिव्यक्तियाँ आते हैं जिनकी उत्पत्ति तथा प्रयोग सम्बद्ध संस्कृति से आंतरिक तथा अद्वितीय रूप से आबद्ध होते हैं। इसलिए हमसे अन्तर्सांस्कृतिक अनुवाद की अपेक्षा की जाती है। इसकी सफलता हमारी उस संस्कृति विशेष की समझ पर निर्भर करती है, जिस पर हम कार्य कर रहे हैं।

हमारा कार्य स्रोत संस्कृति पर ध्यान केन्द्रित करना है या लक्ष्य संस्कृति पर, इसका उत्तर एकदम दो टूक एवं साफ नहीं है। खैर, उसका प्रभुत्वशाली मानदण्ड लक्ष्य पाठ का सम्प्रेषणीय प्रकार्य ही है।

इस तरह यह चिह्नित किया जा सकता है कि अनुवाद में कूट संकेतीकरण को महज भाषा रूपान्तरण पर ही संकेन्द्रित नहीं रहना चाहिए बल्कि अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण तौर पर उसे सांस्कृतिक स्थानांतरण प्रक्रिया पर संकेन्द्रित

?

रहना चाहिए। पूर्व कथन के अवश्यम्भावी परिणाम के तौर पर अनुवादक को बहुसांस्कृतिक नहीं तो कम से कम द्वि-सांस्कृतिक एवं दुभाषिया तो होना ही चाहिए।

अन्ततः ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया जाता है कि अनुवाद के विभिन्न मतांतरों के बीच 'समेकित मत' सर्वाधिक उपयुक्त ठहरता है। यह मत वैश्विक प्रतिमान का अनुकरण करता है जिसमें अपेक्षा यह होती है कि वैश्विक दृष्टि युक्त उपलब्ध पाठ को महत्व दिया जाए। गेस्टाल्ट पिंसिपल के अनुसार ऐसा मत, स्थूल से सूक्ष्म स्तर पर ध्यान संकेन्द्रित करता है। इस मत के अनुसार मात्र किसी एक भाग के विश्लेषण से सम्पूर्ण की समझ विकसित नहीं हो सकती है; अतः अनुवाद अध्ययन आवश्यक तौर पर सम्बन्धों के जाल से जुड़ा होता है। विशिष्ट वस्तुओं का महत्व पाठ, स्थिति तथा संस्कृति के व्यापक फलक में उनकी प्रासंगिकता द्वारा निर्धारित होता है।

इस कारण, सम्प्रेषण के सम्बन्ध में संस्कृति की प्रकृति को जानना-समझना कई रूपों में सहायक है। प्रथमतः वह विभिन्न समाजों और सामूहिक आचार-व्यवहार, मान्यताओं, मूल्यों, तथा परम्पराओं की विभिन्नताओं के उद्भव के विश्लेषण में हमारी मदद करता है, तथा वह सम्प्रेषण प्रक्रिया की भी याद दिलाता है जिसके तहत इन समस्त विभिन्नताओं का जन्म हुआ। सांस्कृतिक विभेदों के सन्दर्भ में लोगों की सहनशीलता को बढ़ाने के सन्दर्भ में इस ज्ञान का प्रयोग हो सकता है, और किया भी जाना चाहिए।

दूसरा यह उस प्रक्रिया को समझने में हमारी मदद करता है जिससे व्यक्ति सम्बन्धों, समूहों, संस्थानों तथा समाजों को समझने एवं अपनाने के क्रम में होकर गुजरते हैं। तीसरा, वह सम्प्रेषण के महत्व का रेखांकन, विभिन्न संस्कृतियों के बीच सेतु के रूप में एवं सांस्कृतिक बदलाव की प्रेरकशक्ति के रूप में करता है।

इस क्षेत्र में बहुत से प्रश्न नीति-निर्माताओं एवं शोधार्थियों की चिंता का विषय हैं। जैसे-जैसे व्यक्तियों, समूहों तथा राष्ट्रों के बीच सम्प्रेषण बढ़ता जाता है, क्या उसका आशय यह है कि उनके बीच विद्यमान सांस्कृतिक विभेद अपरिहार्य तौर पर एकबारगी मिट जाएँगे? क्या समूहों के बीच से व्यक्तियों, प्रतिष्ठानों तथा समितियों की संस्कृतियाँ- जिनका प्रचार और सम्प्रेषण साधनों पर गहरा प्रभुत्व है, वे उन संस्कृतियों को दबा सकते हैं जिनके पास अत्यल्प संसाधन पैठ, तथा नियंत्रण शक्ति है? क्या ज्ञान का उपयोग इस सन्दर्भ में किया जा सकता है कि मनुष्य अपेक्षाकृत अधिक आरामदायक एवं प्रभावपूर्ण ढंग से नए सम्बन्धों, समूहों, प्रतिष्ठानों तथा समुदायों में स्वयं को ढाल सकें? इन मुद्दों के महत्व ने ही इस क्षेत्र को लगातार विद्वानों एवं पेशेवरों द्वारा परीक्षण हेतु महत्वपूर्ण बनाया हुआ है।

यहाँ हमारा ज़ोर अनुवाद की प्रक्रिया तथा इस प्रक्रिया में संस्कृति की भूमिका एवं उसके महत्व पर है। कई प्रकार की दिक्कतों का सामना तब करना पड़ता है जब प्रचलित शीतल पेयों अथवा वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित प्रचारों का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में होता है। इस सन्दर्भ में हमें लक्ष्य भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझना होगा, अन्यथा मात्र शब्दानुवाद मूल पाठ को एक सर्वथा भिन्न अर्थ प्रदान कर देगा। ऐसी ही एक दिक्कत का सामना 'पेप्सी' वालों को करना पड़ा, जब उन्होंने चीन में अपना प्रचार कार्य शुरू किया था। इन उदाहरणों की चर्चा हम अगली इकाई में करेंगे।

जॉर्ज इलियट तथा चार्ल्स डिकेन्स की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद करने वालों को भी ऐसी ही दिक्कतों का सामना करना पड़ा क्योंकि उनके मूल पाठ में तत्कालीन फ्रेंच शब्दों एवं जीवनशैलियों के सन्दर्भ बहुतायत हैं। इसलिए, अंग्रेजी पाठ की अनुवाद प्रक्रिया में, उन्हें उन कृतियों के रचना-काल के दौरान प्रचलित फ्रेंच शब्दों एवं उन प्रचलित जीवनशैलियों को समझना पड़ा है।

1.3 सारांश

इस इकाई में हमने सम्प्रेषण के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों, विभिन्न प्रकार के सम्प्रेषणों, जैसे मौखिक, अमौखिक, आंगिक, हाव-भाव संचालन आदि पर चर्चा की। सभी प्रकार के सम्प्रेषण प्रमुखतः उस संस्कृति से प्रभावित होते हैं जिनमें उनका विकास होता है। समाज, समुदाय अथवा संस्कृति विशेष के सामूहिक विवेक, धर्म, परम्पराओं तथा आस्थाओं व मान्यताओं को संस्कृति का नाम दिया जाता है। अर्थात ये सब मिलकर एक संस्कृति का निर्माण करते हैं।

भाषा तथा संस्कृति भी बेहद करीब से जुड़े हैं। विभिन्न संस्कृतियों ने भाषा के तौर पर विभिन्न संकेतों को जन्म दिया होता है। इस कारण, यदि हम किसी भाषा को समझना चाहें तो हमें उसकी संस्कृति को जानना बेहद आवश्यक हो जाता है।

संस्कृति बहुत ही आत्मनिष्ठ तथा लचीली होती है। उसका कोई एक चेहरा नहीं होता, वह लोगों के मस्तिष्क की संरचना में बेहद बारीकी से घुली रहती है तथा निरन्तर परिवर्तनशील होती है। संस्कृति की ये सभी प्रवृत्तियाँ भाषा द्वारा ही अभिव्यक्त होती हैं।

अनुवाद कार्य में एक भाषा में किसी एक सामाजिक समुदाय द्वारा अभिव्यक्त विचारों को उसी रूप में अन्य सामाजिक समुदाय के बीच अभिव्यक्त किया जाता है जिसमें विसंकेतन करने, पुनःसंकेतन करने, तथा संकेत के रूप में तब्दील करने की एक सांस्कृतिक प्रक्रिया को शामिल किया जाता है। अनुवादकों को स्रोत पाठ में अभिव्यक्त सांस्कृतिक पक्षों के साथ किस तरह बर्ताव किया जाए, इस समस्या से स्थायी तौर पर जूझना पड़ता है तथा इन पक्षों को लक्ष्य पाठ में सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने की उपयुक्त तकनीक को ईजाद करने की ज़िम्मेदारी भी अनुवादकों की ही होती है।

इसलिए, सम्प्रेषण के सम्बन्ध में संस्कृति की प्रकृति को समझना कई मायनों में सहायक है। पहला, यह विभिन्न समुदायों एवं समाजों में व्याप्त क्रियाकलापों, विश्वासों, मूल्यों तथा परम्पराओं के बीच उनके उद्‌भव सम्बन्धी विभेदों को दूर करती है तथा ये विभेद जिस प्रकार घटित हुए, उस सम्प्रेषण प्रक्रिया का अनुस्मारक भी प्रदान करती है। यह ज्ञान सांस्कृतिक विभेदों की बावत लोगों की सहिष्णुता को बढ़ाने में उपयोगी हो सकता है तथा इस सन्दर्भ में इसका उपयोग करना भी चाहिए।

दूसरा यह हमें उस प्रक्रिया को समझने में भी मदद करती है जिसके द्वारा व्यक्तिगण परस्पर नए सम्बन्धों, समूहों, प्रतिष्ठानों, समितियों तथा संस्कृतियों को अपनाने की दिशा में बढ़ते हैं। तीसरा, यह विभिन्न संस्कृतियों के बीच एक सेतु के रूप में संचार के महत्व को रेखांकित करती है।

1.4 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) सम्प्रेषण क्या है? समझाइए। विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रदत्त सम्प्रेषण की परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए। साथ ही सम्प्रेषण की भारतीय अवधारणा का भी उल्लेख कीजिए।
2) सम्प्रेषण के दो प्राथमिक प्रकार कौन से हैं? तथा भाषा सप्रेषण के लिए कितनी आवश्यक है?
3) संस्कृति क्या है? संस्कृति एवं सम्प्रेषण के बीच सम्बन्धों को विश्लेषित कीजिए।
4) अनुवाद कार्य हेतु, स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की संस्कृतियों को जानना क्यों महत्वपूर्ण है? समझाइए।

1.5 शब्द सूची

- **साइबर एज (Cyber age)** – आज हम जिस युग में जी रहे हैं, उसे 'साइबर एज' कहते हैं, जिसमें इण्टरनेट तथा मल्टीमीडिया के प्रयोग में खासी बढ़ोत्तरी हो।
- **डाटा हैण्डलिंग (Data Handling)** – आँकड़ा संचयन, वे सूचनाएं जिन्हें हम अधिकांशतः इंटरनेट के जरिए प्राप्त करते हैं, उन्हें हम 'डाटा' कहते हैं। उन प्राप्त सूचनाओं को इस प्रकार व्यवस्थित ढंग से संयोजित करना, जिससे हम उनका उपयोग कर सकें, वह 'डाटा हैण्डलिंग कहलाता है।
- **डिकोडिंग (Decoding)** – विसंकेतित करना – स्रोत पाठ को समझना
- **रिकोडिंग (Recodiong)** – स्रोत पाठ को लक्ष्य भाषा में अनूदित करना।
- **ट्रांसकोडिंग (Transcoding)** – किसी पाठ को उसके सांस्कृतिक सन्दर्भों के साथ पूर्णतः समझना तथा उसके उपरान्त उसे लक्ष्य भाषा में तब्दील करना।

- **बहुसांस्कृतिकता –** इसका अर्थ यह है कि हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं, जिसमें विभिन्न समुदायों के बीच सम्प्रेषण प्रक्रिया को बढ़ाने हेतु सांस्कृतिक विभेद मिट चुके हैं।
- **स्रोत संस्कृति/पाठ-स्रोत संस्कृति –** मूल पाठ की संस्कृति होती है। स्रोत पाठ वह पाठ है जिसका अनुवाद करना है। उदाहरणार्थ-यदि हमें अर्नेस्ट हेमिंग्वे के ओल्ड मैन एण्ड सी (वृद्ध पुरुष तथा समुद्र) का अनुवाद करना है, तो अंग्रेजी उपन्यास स्रोत पाठ में होगा तथा स्रोत संस्कृति 20वीं शती की अमरीकी संस्कृति होगी।
- **लक्ष्य संस्कृति/पाठ-लक्ष्य संस्कृति –** उस भाषा की संस्कृति है जिसमें मूल पाठ का अनुवाद करना है तथा लक्ष्य पाठ वह है जिसमें स्रोत पाठ अनूदित किया जा रहा है।

1.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Gerry and Wilson, Elizabeth: Communication and Culture: A Collection of Observation; The University of Calgary.
- Kumar, Keval J., 2000. Mass Communication in India : Jaico Publishing House.
- Priest, Susanna Hornig, 2010. Doing Media Research:Sage Publications, Inc.

इकाई 2 अन्तःसांस्कृतिक एवं अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण एवं इसकी बाधाएँ

2.2.1 अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण एवं अनुवाद

2.3 अनुवाद और अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण

2.3.1 अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण की बाधाएँ एवं अनुवाद

2.3.2 अनुवाद एवं अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण

2.4 सारांश

2.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.6 शब्द सूची

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे कि :

- अन्तःसांस्कृतिक तथा अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण क्या है;
- संस्कृति की विशेषताएँ क्या-क्या हैं;
- अन्तःसांस्कृतिक तथा अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण की बाधाएँ क्या-क्या हैं;
- अनुवाद के लिए संस्कृति का क्या महत्व है; और
- अनुवाद प्रक्रिया में संस्कृति और सम्प्रेषण के सम्बन्ध को समझना कितना आवश्यक है।

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम 'संस्कृति' और 'सम्प्रेषण' की विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। संस्कृति और सम्प्रेषण की अवधारणाओं को समझने के बाद अब हम अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण और अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण पर विचार करेंगे।

2.2 अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण एवं इसकी बाधाएँ

अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण का अर्थ है किसी एक संस्कृति के भीतर होने वाला सम्प्रेषण। कोई भी संस्कृति एक ही प्रकार की (या सजातीय) नहीं होती है। संस्कृति ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को आकार देती है। प्रत्येक संस्कृति के भीतर दूसरी संस्कृति का एक अन्य रूप भी विकसित होता है जिसका प्रतिनिधित्व संस्कृति विशेष के व्यक्ति करते हैं क्योंकि केवल संस्कृति ही प्रभावित करने वाला कारक नहीं होती। अन्य कारक भी इसमें शामिल होते हैं, जैसे आर्थिक, वर्ग, शिक्षा, जाति, व्यवसाय, पालन-पोषण आदि।

इस प्रक्रिया में उस व्यक्ति और उसके परिवार की संस्कृति पैतृक संस्कृति में परिवर्तित हो जाती है। यह पुनः कई अन्य कारकों से भी प्रभावित होते है जो समय के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए, एक ही संस्कृति के

लोगों के बीच सम्प्रेषण में बाधाएँ आ सकती हैं। आश्चर्यजनक रूप से ये बाधाएँ लगभग वैसी हैं जैसी अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण में होती है। एक बहु-सांस्कृतिक समाज होने के कारण भारत इन बाधाओं को बेहतर तरीके से समझ सकता है। ये प्रमुख बाधाएँ निम्नलिखित हैं :

भाषा

यद्यपि अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण में संवाद एक ही भाषा में होता है। फिर भी भाषा का प्रयोग एक व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, जालंधर का एक पंजाबी और उसी जाति का एक दिल्ली वासी पंजाबी, पंजाबी भाषा का प्रयोग अलग-अलग ढंग से करेंगे, उनकी भाषाओं में स्थानीय सन्दर्भ एवं शब्दावली होगी जो बिना व्याख्या के उन दोनों को समझने में कठिनाई होगी। उनका उच्चारण भी अलग-अलग होगा।

इसी प्रकार, लखनऊ का एक ब्राह्मण और कानपुर का एक ब्राह्मण हिन्दी का प्रयोग अलग-अलग तरीके से करेंगे। उनका लहजा, उनकी शब्दावली और उच्चारण पूरी तरह से अलग-अलग हो सकते हैं, क्योंकि दोनों का वातावरण और पलने-बढ़ने का तरीका बिल्कुल अलग-अलग है।

उदाहरण के लिए, दिल्ली में बसे उत्तर प्रदेश के एक मध्यवर्गीय हिन्दू को हिन्दी के 'कंटाप' का अर्थ समझने में कठिनाई होगी, परन्तु लखनऊ की एक मध्यवर्गीय हिन्दू इसे आसानी से समझ लेगी, जिसका अर्थ है गाल पर चपत (थप्पड़) लगाना। एक ही भाषा को अलग-अलग प्रकार से प्रयोग करने के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

अगर एक ही संस्कृति के लोग किसी वस्तु पर विचार के लिए या किसी रिवाज को मनाने के लिए जमा हुए हैं तो उनकी भाषा की विविधता पर ध्यान दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, दुर्गापूजा के अवसर पर बंगाली समुदाय के लोग विभिन्न पंडालों में एकत्रित होते हैं इस अवसर पर बांग्ला का प्रयोग करते समय उनकी भाषा की बारीकियों को देखा एवं समझा जा सकता है।

अमौखिक सम्प्रेषण

मनुष्य की शारीरिक भाषा को लेकर कई शोध हो चुके हैं और यह देखा गया है कि हर मनुष्य की शारीरिक भाषा अलग-अलग होती है चाहे वे एक ही संस्कृति के हों या विषम संस्कृति के। आमतौर पर कुछ खास मुद्राएँ या हाव-भाव समान हो सकते हैं परन्तु कुछ सूक्ष्म संकेत हैं जो अलग-अलग हो सकते हैं। सम संस्कृति के लोग कैसे दिखते हैं, बैठते हैं, खड़े होते हैं, बातचीत के समय किस प्रकार हाथ हिलाते हैं यह सम संस्कृति में अलग-अलग लोगों में अलग-अलग हो सकता है।

उदाहरण के लिए किसी संस्कृति में भोजन के समय भले ही मेज एक ही प्रकार से लगाया जाता हो, परन्तु उनके खाने का ढंग अलग-अलग हो सकता है। यह उनके घर के वातावरण तथा पालन-पोषण पर निर्भर करता है। इसलिए किसी व्यक्ति की शारीरिक भाषा, हाव-भाव तथा नेत्र-संचालन को समझने के लिए केवल उसकी संस्कृति पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता, बल्कि उसके सम्पूर्ण वातावरण को भी समझना जरूरी है जिससे वह व्यक्ति सम्बन्धित है।

प्रत्यक्ष ज्ञान

बाहरी दुनिया से सूचनाओं के अवलोकन, चयन, ग्रहण तथा उन्हें संगठित या व्यवस्थित करने की प्रक्रिया प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाती है। इसलिए संसार के प्रति हमारी समझ इस बात पर निर्भर करती है कि हम अपने आस-पास के वातावरण को किस प्रकार देखते हैं, किस प्रकार वस्तुओं का अवलोकन करते हैं, कैसे प्रतिक्रिया देते हैं तथा किस प्रकार चिन्तन या विचार करते हैं। यह दो व्यक्तियों में एक जैसा नहीं हो सकता है। भले ही वे एक ही संस्कृति के हों, क्योंकि बाहरी दुनिया को वे किस प्रकार देखते हैं यह उनके सहज ज्ञान, उनके परिवेश तथा प्राकृतिक एवं मानव निर्मित वातावरण पर निर्भर करता है।

इसलिए किसी व्यक्ति के वार्तालाप या दृष्टिकोण को समझने के लिए उस व्यक्ति के वातावरण को जानना आवश्यक होता है। हालांकि हम संसार को किस प्रकार अनुभव करते हैं, चाहे वह हमारे खाने जैसी सामान्य बात

हो या कोई पर्यटन स्थल जहाँ हम जाते हैं, वह हमारे सांस्कृतिक अनुभव का एक हिस्सा है, परन्तु यह सांस्कृतिक अनुभव हर व्यक्ति के लिए समान नहीं हो सकता है, भले ही वे एक ही संस्कृति के क्यों न हों।

आस्थाएँ

किसी वास्तविक या संभाव्य वस्तुओं पर लिया गया निर्णय या राय आस्था कहलाती है। ये उन वस्तुओं या घटनाओं से निर्मित होती है जिन्हें हम प्रमाण सहित या बिना प्रमाण के ही सच मान लेते हैं। यह धर्म भी हो सकता है। (ईश्वर केवल एक है), कोई घटना भी हो सकती है (मीटिंग सफल थी) या कोई व्यक्ति भी हो सकता है (वह काफी मित्रवत थी।)

हमारी बहुत-सी आस्थाएँ उन चीजों या परिघटनाओं से जुड़ी होती है जो अप्रत्याशित, अप्रत्यक्ष एवं अकथनीय होती है, जैसे मृत्यु, रोमांस, प्रेम, मौसम आदि। ये आस्थाएं किसी संस्कृति में प्रायः समान होती हैं। परन्तु व्यक्ति अपने-अपने अनुभवों से अपनी स्वयं की धारणाएँ भी विकसित करते हैं। उदाहरण के लिए यह आवश्यक नहीं है कि एक ही विश्वास वाले दो व्यक्तियों की मृत्यु या प्रेम को लेकर धारणाएँ समान हों। वे किसी अन्य व्यक्ति से अपनी औपचारिक मुलाकातों के बारे में भी एकमत नहीं हो सकते (एक को वह व्यक्ति रौबदार लग सकता/ती है जबकि दूसरा उसे स्नेहशील समझ सकता/ती है।) इसलिए, भले ही हम किसी संस्कृति या उसकी आस्थाओं को व्यापक तौर पर समझ सकते हैं, पर यह आवश्यक नहीं है कि उस संस्कृति के किसी व्यक्ति या परिवार की आस्था से भली-भाँति परिचित ही हों। इसके लिए उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानना अनिवार्य हो जाता है।

धार्मिक रीतियाँ

धार्मिक रीति-रिवाज आस्थाओं को सम्पन्न करने तथा अभिव्यक्त करने के तरीके हैं जो एक संस्कृति में बहुत हद तक समान हो सकते हैं। कुल मिलाकर, एक ही संस्कृति से सम्बन्धित व्यक्तियों के रीति-रिवाज लगभग समान होते हैं जैसे शादी-ब्याह, श्राद्ध-कर्म या किसी विशेष पूजा को सम्पन्न करने की पद्धति। परन्तु परिवार भी खुद के रीति-रिवाज विकसित करते हैं। यहाँ तक कि एक व्यक्ति भी स्वयं की पद्धति विकसित करता/ती है। इस सन्दर्भ में उत्तर भारत के लोकप्रिय पर्व करवा चौथ का उदाहरण लिया जा सकता है। व्यापक तौर पर कहें तो यह पर्व पंजाबियों का उपवास करने का और पूजा करने का विशेष तरीका होता है। परन्तु समय के साथ-साथ तथा अपने अनुभवों से हर परिवार अपनी खुद की पद्धति भी विकसित कर लेता है। और हमारे समाज में लोग प्रायः यह कहते हैं कि – 'देखिए, आमतौर पर यह इस तरीके से किया जाता है, पर हम इसे थोड़े अलग तरीके से करते हैं।' हम इसे भारत के उत्तरांचल के राजपूत समाज की एक वैवाहिक रीति के माध्यम से विस्तार से समझ सकते हैं। प्रत्येक समुदाय में उप-जातियाँ तथा विभिन्न आर्थिक वर्ग होते हैं। ये विविधताएँ एक ही समुदाय में विवाह की रीतियों में परिवर्तन लाती हैं क्योंकि परिवार भी समय के साथ-साथ अपने रीति-रिवाज विकसित कर लेते हैं।

2.2.1 अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण एवं अनुवाद

एक बहुसांस्कृतिक समाज को समझना काफी मुश्किल है क्योंकि उसके विश्वास, जीवन-शैली, धार्मिक पद्धतियाँ, भाषा, रीति-रिवाज आदि में बहुत भिन्नताएँ होती है। लेकिन ऐसे समाज का एक सूत्र होता है जो उन्हें बाँधे रखता है। ऐसे किसी पाठ के अनुवाद की प्रक्रिया में, जिसके लिए उस संस्कृति को विस्तृत रूप में समझना आवश्यक है, व्यक्ति को न केवल उस संस्कृति का अध्ययन करने की जरूरत है बल्कि उस सूत्र को भी समझने की जरूरत है जो उसे एक दूसरे से बाँधे रखता है। साथ ही, उसे उन समान संस्कृतियों की भी समझ होनी चाहिए जिनका सह-अस्तित्व उस समाज में है तथा जिनका उस विशेष संस्कृति पर प्रभाव पड़ा है।

उदाहरण के लिए, हम किसी ऐसे हिन्दी पाठ का अनुवाद कर रहे हैं जो उत्तर प्रदेश के लखनऊ पर केन्द्रित है, तो हमें कानपुर या फैजाबाद की भी उस विशेष वर्ग की संस्कृति को जानना होगा। यदि हम न्यूयॉर्क के अश्वेत समुदाय पर आधारित किसी पाठ का अनुवाद कर रहे हैं तो हमें अश्वेत समुदाय के साथ-साथ पूरे अमेरिकी समुदाय को भी जानना जरूरी है, अन्यथा किसी विशेष शब्द या भाव का सांस्कृतिक सन्दर्भ हमसे छूट सकता है।

एक सामान्य उदाहरण के रूप में 'बंगलाई' शब्द को ले सकते हैं यदि हमें भारत में बंगलौर के आउटसोर्सिंग हब के बारे में पता नहीं है तो हम अनुवाद में इस शब्द की सही सन्दर्भों में व्याख्या नहीं कर पाएँगे।

निश्चित रूप से विश्व तेजी से एक विश्व ग्राम के रूप में परिवर्तित हो रहा है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि हम संस्कृति, धर्म, आस्थाओं के रूप में एक हो रहे हैं। इसका सामान्य अर्थ यही है कि हम एक दूसरे के करीब आ रहे हैं और एक दूसरे को बेहतर तरीके से जान सकते हैं। इस तरह के परिदृश्य में, लोग आमतौर पर अपने सांस्कृतिक, जातीय तथा राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति सचेत हो जाते हैं। यहाँ तक कि वे उन भिन्नताओं को संरक्षित करने का भरसक प्रयास करते हैं जिससे कि वे अपनी पहचान कायम रख सकें। एक अनुवदक के तौर पर हमारा प्राथमिक दायित्व होता है कि हम उन बारीकियों को न केवल भिन्न संस्कृतियों में बल्कि समान संस्कृतियों में भी समझने का प्रयास करें, तभी हम किसी पाठ के मूल तत्वों को गँवाए बिना उसका सटीक अनुवाद कर सकते हैं।

2.3 अनुवाद एवं अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण

मनुष्य अपने जैसे स्वभाव वाले व्यक्तियों के ही साथ रहने के इच्छुक होते हैं, क्योंकि वे चीजों को एक ही प्रकार से करते हैं, उनके संस्कार एक जैसे होते हैं तथा वे एक जैसे नियमों के तहत कार्य करते हैं। जब हम अपने जैसे लोगों के साथ होते हैं, तब हम जो कुछ भी करते हें, वह व्यावहारिक ज्ञान की तरह ही लगता है।

फिर भी, कभी-कभार कार्य या अध्ययन या साहस की भावना हमें अपने सुविधा-क्षेत्र से बाहर ले जाती है। ऐसा होने पर हमें महसूस होता है कि मानवीय व्यवहार की जिन चीजों को हम तथ्य रूप में मान लेते थे, वे हर किसी के लिए समान हीं हैं। यह बहुत कठिन तथा चौंकाने वाला अनुभव हो सकता है। इसी कारण 'सांस्कृतिक आघात' शब्द प्रयोग अस्तित्व में आया। इस इकाई में हम यह विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे कि हम कैसे प्रतिक्रियाएँ करते हैं। हम किसी कार्य को किसी खास तरह से क्यों करते हैं, दो संस्कृतियों के आदान-प्रदान को किस प्रकार सकारात्मक बनाया जाए तथा उन सांस्कृतिक भिन्नताओं को लक्ष्यभाषा में किस प्रकार सटीक अनुवाद करें।

संस्कृति क्या है?

हम बार-बार संस्कृति की चर्चा कर रहे हैं क्योंकि इसकी बारीकियों को समझना बहुत आवश्यक है। संस्कृति मानव सृजित है, पर्यावरण का मानवीय भाग है। यह पर्यावरण का अजैविक भाग है। यह सामाजिक व्यवस्था के भीतर सहभागिता और अर्थ को उत्पन्न करने की प्रक्रिया है। संस्कृति माता-पिता, विद्यालय तथा जन-संचार के माध्यम से सीखी जाती है। फिर भी यह परिवर्तनशील होती है। यह समझना आवश्यक है कि यद्यपि संस्कृति मूलभूत हो सकती है, पर यह जन्मजात नहीं होती। यह पारस्परिक व्यवहार के माध्यम से सृजित तथा पुनर्सृजित होती रहती है।

संस्कृति विशेष व्यक्तियों के पारस्परिक मूल्यों एवं आस्थाओं से निर्मित होती है। इसलिए अक्सर इसकी चर्चा, विश्लेषण या आलोचना नहीं की जाती है। और एक वर्ग विशेष में इसे व्यावहारिक ज्ञान ही माना जाता है। परिणामस्वरूप किसी समुदाय द्वारा अपने व्यवहार, आस्थाओं या जीवन-शैली को स्वाभाविक बताने के लिए संस्कृति को तथ्य रूप में भी माना जा सकता है। लोगों के एक समूह के लिए यह मानना संभव है कि जैसे वे व्यवहार करते हैं वही सही है और सबके लिए उचित है।

संस्कृतियों में एक आंतरिक तार्किकता एवं संसक्तता (मेल या सम्बद्धता) होती है। अतः उनकी एक अपनी मान्यता होती है। संस्कृतियों के बीच सम्प्रेषण को बढ़ाने के लिए सम्प्रेषण को एक सामाजिक तौर पर निर्मित यथार्थ के रूप में समझना आवश्यक हैं। यदि हम यह समझ सकते हैं तो यह भी समझ सकते हैं कि अलग-अलग लोगों की सम्प्रेषण विधि अलग-अलग होती है, उनके रीति-रिवाज, आस्थाएँ और संस्कार अलग-अलग होते हैं। हालांकि ये सभी हमारे सम्प्रेषण या आस्थाओं से विरोधाभासी या असहमत हो सकते हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरी संस्कृति हीन या गलत है।

इस प्रकार, संस्कृति की कुछ प्रधान विशेषताएँ हैं :

1. यह पर्यावरण का मानवीय पक्ष है।
2. संस्कृति जीवन के स्वीकृत अनुमानों (या कल्पनाओं) को प्रतिबिम्बित करती है।

3. संस्कृति इतनी मूलभूत है कि अधिकतर व्यक्ति इसकी चर्चा या विश्लेषण नहीं कर सकते या नहीं करते।
4. संस्कृति तब स्पष्ट होती है जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे देश के व्यक्ति से मिलती है जो उनके अपने सांस्कृतिक परिवेश से अलग होता है।
5. संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी बदलती रहती है।
6. यहाँ तक कि नई परिस्थितियों में भी लोग इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि उनकी अपनी संस्कृति में क्या होता है।
7. सांस्कृतिक मूल्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते रहते हैं और साथ-साथ बदलते रहते हैं।
8. सांस्कृतिक प्रतिमानों का उल्लंघन भावनात्मक प्रभाव डालता है।
9. सांस्कृतिक विषमताओं का सामान्यीकरण आसान है (यद्यपि यह उतना लाभदायक नहीं है।)

अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण क्या है?

आज हम 'भूमण्डलीय' दुनिया में रह रहे हैं। कोई भी देश या संस्कृति अब गुमनाम नहीं रह सकते। तकनीक, बाजार की जरूरतों तथा संचार माध्यमों ने हमें इतना करीब ला दिया है कि दुनिया के किसी भी हिस्से में घटी घटना पूरी दुनिया को प्रभावित करती है। अब जैसे-जैसे दुनिया सिकुड़ रही है हम विभिन्न संस्कृतियों के लोगों से रू-ब-रू हो रहे हैं। और विभिन्न संस्कृतियों के लोगों से सम्पर्क के लिए उनकी भाषाएँ जानना जरूरी है।

अब लिपिबद्ध प्रतीकों के तौर पर भाषा आसानी से सीखी जा सकती है। परन्तु उन प्रतीकों में निहित अर्थों को हम तभी समझ सकते हैं जब हम उस भाषा की गहराई में समाई हुई संस्कृति को समझें। शब्दों एवं संकेतों का शाब्दिक अनुवाद कई बार अर्थ का अनर्थ कर देता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए गए हैं जिनमें शाब्दिक अनुवाद ने लक्ष्यभाषा में अर्थ का अनर्थ कर दिया है :

- चीन में, KFC के टैगलाइन 'fingerlickin good' का अनुवाद किया गया ''अपनी अंगुलियाँ खाइए।'
- शेवरलेट ने लैटिन अमेरिका के बाजार में अपनी कार nova compact को स्थापित करने का प्रयास किया, जो असफल रहा क्योंकि स्पेनिश में 'दव अं' का अर्थ है 'जो नहीं जाता' या 'यह नहीं चलता'।
- जर्मनी में बार्लिनर (Berliner) नामक एक खाद्य पदार्थ 'जेली डोनट' है। एक बार बर्लिन की दीवार पर अमेरिकी राष्ट्रपति केनेडी ने घोषणा की, 'Heute, ich bin ein Berliner' जिसका अर्थ था कि वे एक जेली डोनट हैं, जबकि वे कहना चाह रहे थे कि वे बर्लिन के हैं।
- आस्ट्रेलिया में, राष्ट्रपति ने कारों की एक रैली में अमन की निशानी के तौर पर हाथ को मोड़कर एक चिह्न बनाया, आस्ट्रेलिया में इस संकेत को अश्लील माना जाता है।
- कोका कोला को चीनी भाषा में ध्वन्यात्मक रूप से समान शब्द चाहिए था इसलिए उसने 'Ke Koe Ke La' बनाया, चीनी बोली के अनुसार इसका अर्थ था – 'मोम से बने हुए मेंढक के बच्चे को चबाओ' या मोम से बनी (या भरी) घोड़ी।

ऐसी भाषिक तथा सांस्कृतिक चूकों से आसानी से बचा जा सकता है यदि हम दूसरे लोगों और उनकी संस्कृति के प्रति अपनी समझ बढ़ाएँ। अन्तर्सांस्कृतिक संप्रेषण का अध्ययन इस आवश्यकता को दो संस्कृतियों तथा उप-संस्कृतियों के बीच सम्प्रेषण तथा पारस्परिक व्यवहार के निरीक्षण द्वारा पूरा करता है। अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण की मूलभूत मान्यता है कि संस्कृति के माध्यम से लोग एक दूसरे से सम्प्रेषण कर सकते हैं।

एक भारतीय, अमेरिकी या चीनी व्यक्ति एक भारतीय, अमेरिकी या चीनी के तौर पर ही सम्प्रेषित करना सीखता/ती है। उनका व्यवहार एक खास अर्थ को प्रतिपादित करता है क्योंकि यह अर्जित किया हुआ तथा पारस्परिक होता है। दूसरे शब्दों में यह सांस्कृतिक व्यवहार है। इसलिए लोगों का व्यवहार, एक-दूसरे के साथ उनका सम्पर्क, उनकी भाषा, उनकी जीवन-शैली तथा अमौखिक व्यवहार – सभी संस्कृति द्वारा निर्धारित होते हैं।

चूँकि संस्कृतियाँ एक दूसरे से अलग होती है इसलिए दुनिया को अलग प्रकार से देखने के नजरिए के कारण सम्प्रेषण के माध्यम और व्यवहार भी निश्चित रूप से अलग-अलग होते हैं। अतः अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण ऐसे लोगों के बीच सम्प्रेषण है जिनका 'सांस्कृतिक-बोध एवं प्रतीक तंत्र इतना पृथक एवं स्पष्ट हो कि उनके सम्प्रेषण को परिवर्तित तथा भिन्न बना सके (समोवर एंड पोर्टर)। किसी संदेश का अर्थ तब बदल जाता है जब यह किसी एक संस्कृति के व्यक्ति द्वारा कोडीकृत हो गया हो तथा विभिन्न संस्कृति के व्यक्ति उसे अपने सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में विकोडीकरण करें।

कुछ मामलों में, किसी कथ्य का अर्थ आशा से विपरीत किसी अन्य प्रकार से भी विश्लेषित हो सकता है। सांस्कृतिक भिन्नताएँ हमारे विभिन्न अनुभवों से उत्पन्न होती हैं जो इस बात से निर्धारित होती है कि हम दूसरी संस्कृतियों के लोगों से किस प्रकार सम्पर्क करते हैं। लोग दूनिया को किस नजरिए से देखते हैं, उनके संस्कार तथा आस्थाएँ क्या हैं – इन्हें समझकर हम यह बेहतर तरीके से समझ सकते हैं कि वे क्या कहना चाहते हैं तथा इससे हम अन्तर्सांस्कृतिक गलतफहमियों से बच सकते हैं। अब यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान, आस्था और संस्कार को और अधिक करीब से भी समझने की जरूरत है।

प्रत्यक्ष ज्ञान

प्रत्यक्ष ज्ञान को क्लॉफ और पार्क (Klopf and Park) ने इस प्रकार परिभाषित किया है – 'यह एक आंतरिक प्रक्रिया हे जिसके तहत हम बाहरी दुनिया से सूचनाओं का चुनाव करते उन्हें संगठित या व्यवस्थित तथा विश्लेषण करते हैं।' हम कह सकते हैं कि दुनिया के प्रति हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान वही है जो हम अपने परिवेश में देखते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं तथा जिसे सार्थक या महत्वपूर्ण मानते हैं। परिणामस्वरूप, दो लोगों का किसी वातावरण को देखने का ढंग अलग-अलग होता है। विशेषकर यह तब होता है जब हम ऐसे किसी व्यक्ति के सम्पर्क में आते हैं जिसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हमसे पूर्णतः अलग हो। प्रत्येक व्यक्ति दुनिया जिस प्रकार देखता/ती है वह सीखा हुआ होता है जो हमारे सांस्कृतिक अनुभव का हिस्सा होता है। चाहे हम किसी खाद्य पदार्थ का परीक्षण कर रहे हों या किसी पार्टी का, या किसी सभा में किसी से हमारा मिलने का ढंग हो – हम इन घटनाओं पर उसी तरह से प्रतिक्रिया करते हैं जो हमने अपनी संस्कृति से सीखा हुआ होता है। हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान संस्कृति द्वारा निर्धारित होता है जिससे हमारी सम्पर्क-शैली प्रभावित है।

आस्थाएँ

जैसाकि हम इसी इकाई में पीछे पढ़ चुके हैं कि किसी वास्तविक या संभाव्य वस्तुओं पर लिए गए निर्णय या राय आस्था कहलाती है। ये उन वस्तुओं या घटनाओं से सम्बन्धित है जिन्हें हम प्रमाण सहित या बिना प्रमाण के सच मान लेते हैं उदाहरण के लिए, हमारी आस्थाएँ धर्म से सम्बन्धित हो सकती हैं (ईश्वर एक है। ईश्वर को मूर्ति के रूप में पूजा जा सकता है या ईश्वर निराकार रूप में हर जगह विद्यमान है) घटनाओं से सम्बन्धित हो सकती हैं (मीटिंग सफल रही), दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्धित हो सकती है (वह बहुत विनम्र व्यक्ति है) या फिर अपने आप से सम्बन्धित हो सकती है (मैं बहुत मेहनती, मित्रवत और पेशेवर हूँ।)

प्राइस के अनुसार, हमारी आस्थाएँ इस बात से सम्बन्धित होती हैं कि चीजे कैसे काम करती हैं, चीजें उस प्रकार क्यों हैं तथा चीजें कहाँ से आती हैं। हमारी अधिकतर आस्थाओं का सम्बन्ध मौसम, मृत्यु, जन्म और प्रेम जैसी अकथनीय तथा अप्रत्याशित वस्तुओं या घटनाओं की व्याख्या से होता है। हमारी आस्थाएँ हमारे सांस्कृतिक अनुभवों तथा विरासत से भी निर्धारित होती हैं। आरंभ से ही हमें उन्हीं बातों पर विश्वास करना सिखाया जाता है जो संस्कृति के अनुसार सही और उचित होती हैं। अतः हमारा विश्वास (या आस्था) तंत्र हमारे संस्कारों का आधार बनता है और इन्हीं संस्कारों से हमारा स्वभाव और दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार निर्धारित होता है।

संस्कार

चिरस्थायी आस्थाओं का समूह जो हमारे व्यवहार को तय या निर्देशित करते हैं, वे संस्कार कहलाते हैं। वे किसी संस्कृति के आदर्शो का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा यह बताते हैं कि क्या अच्छा है क्या बुरा, क्या सही है क्या गलत, तथा क्या उचित है और क्या अनुचित। हम कह सकते हैं कि संस्कार हमें ऐसे नियम प्रदान करते हैं जिनके

माध्यम से हम व्यवहार करने के, चुनाव करने के और अनिश्चितता घटाने का कार्य कर सकते हैं। हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान और आस्थाओं की तरह संस्कार भी अर्जित किए जाते हैं, अतः उनकी व्याख्या भी की जा सकती है।

जब हम किसी विशेष व्यवहार, किसी वस्तु या घटना की व्याख्या करते हैं तो वास्तव में हम अपने संस्कारों के अनुसार करते हैं जो असल में हमारी संस्कृति को प्रतिबिंबित करते है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय स्त्री किसी यूरोपीय व्यक्ति के साथ हाथ मिलाना पसन्द नहीं करेगी, जबकि हाथ मिलाना पश्चिमी सभ्यता में बेहद सामान्य घटना है। इसी तरह एक अंग्रेज व्यक्ति जो सामान्यतः एकान्त पसन्द करता/ती हो, वह किसी मेक्सिकन का अपने करीब खड़ा होना पसन्द नहीं करेगा/गी।

किसी संस्कृति के भीतर के संस्कारों की सापेक्षिक (या तुलनात्मक) महत्ता उस संस्कृति की लोक प्रचलित कहावतों में प्रतिबिम्बित होती है, जैसे – 'जेब्रा अपनी धारियों की उपेक्षा नहीं करता' (अफ्रीका), 'समय धन है' (अमेरिका) या व्यक्ति को जानने की जरूरत नहीं, उसके परिवार को जानो (चीनी)। ये सारी कहावतें उस संस्कृति के मूल्यों को ही प्रतिबिम्बित नहीं करतीं, बल्कि उस विशेष संस्कृति को बेहतर तरीके से समझने में मददगार हैं।

अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण पर विचार-विमर्श की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि यह संस्कृतियों का सामान्यीकरण कर सकता है। कुछ विचार व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर आसानी से बना लिए जाते हैं, परन्तु वे हमेशा सही नहीं होते। जैसे 'एशियाई विद्यार्थी अनुशासित होते हैं', 'अमेरिकी विद्यार्थियों को संचालित करना काफी मुश्किल होता है', या 'यूरोपीयन काफी बतंगड़ होते हैं। अति सरलीकरण या सामान्यीकरण अन्तर्सांस्कृतिक अध्ययन का उद्देश्य नहीं हो सकता क्योंकि एशियाई, अमेरिकी या किसी भी यूरोपीयन की अवधारणा काफी अस्पष्ट है। एशिया में कई देश हैं और सबकी अपनी विशिष्ट संस्कृति हैं। अमेरिका भी एक बहुसांस्कृतिक समाज है। यूरोप में भी कई देश हैं और सबकी संस्कृतियाँ भिन्न हैं।

संस्कृतियों के बीच सम्प्रेषण की बात पर विचार करते हुए उन्हें स्थिर तथा स्वतंत्र सत्ता मानने के बजाय गतिशील एवं परस्पर जुड़ा हुआ मानना कहीं अधिक लाभदायक तथा सही है। परन्तु यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि कुछ खास विशिष्टताओं के सन्दर्भ में, हर संस्कृति के लोग अलग-अलग बिखरे रहेंगे जबकि किसी एक संस्कृति में लोग किसी एक ही निश्चित बिन्दु की ओर केन्द्रित रहेंगे। यद्यपि लोग एक ही बिन्दु में केन्द्रित होते हैं, लेकिन कुछ क्षेत्र ऐसे भी हो सकते हैं जहाँ वे एक दूसरे से आंशिक रूप से मिलते हैं और उनमें कुछ समानताएँ हो सकती हैं।

2.3.1 अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण की बाधाएँ एवं अनुवाद

जब दो भिन्न संस्कृतियों के लोग मिलते हैं तो उनकी धारणाओं, पूर्वग्रहों या अवरोधों के कारण उनके सम्प्रेषण में कुछ बाधाएँ आ सकती है। इनमें से कुछ बाधाएँ निम्नलिखित हैं :

संस्कृतिनिष्ठता/संस्कृति केन्द्रीयता

संस्कृतिनिष्ठता का अर्थ है अपनी स्वयं की संस्कृति की केन्द्रीयता में विश्वास। इसी कारण दूसरी संस्कृति को भी अपनी संस्कृति के मानदण्डों द्वारा आँका जाता है। बेनेट ने संस्कृतिनिष्ठता को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है 'अपनी संस्कृति को दुनिया की सभी सच्चाइयों का केन्द्र मानना।' अब यह स्वाभाविक है कि हम जिस समुदाय में पले-बढ़े हैं, उसी के संस्कार हममें होंगे। जिन तरीको से हम दूसरे लोगों के साथ रहते और व्यवहार करते हैं इन्हीं चीजों पर हम विश्वास करते हैं और उन्हें ही सही रूप में मानते हैं, परन्तु किसी दूसरे समाज के संस्कार होना बुरा या हीन नहीं है। यह समझना आवश्यक है कि हम जिन लोगों से सम्पर्क कर रहे हैं उनका किसी कार्य को करने का ढंग हमारे ढंग से अलग हो सकता है।

परन्तु दुर्भाग्यवश, हम केवल अपनी संस्कृति की केन्द्रीयता की ओर प्रवृत्त होते हैं, जो दूसरी संस्कृति को समझने में बाधक हो सकता है। बेनेट ने संस्कृतिनिष्ठता के विभिन्न चरणों को समझाने के लिए एक प्रारूप तैयार किया। इसका प्रथम चरण है – प्रतिवाद (या इनकार)। जब हम किसी दूसरी संस्कृति के सम्पर्क में आते हैं तो अपनी और उस संस्कृति के बीच सम्प्रेषण की किसी भी असमानता से इनकार कर देते हैं।

दूसरा चरण रक्षा (या प्रतिरक्षा) है। यह चरण सांस्कृतिक टकराव आने वाले अन्तर के संभावित खतरों को कम करने के लिए उत्पन्न होता है। व्यक्ति अपने दृष्टिकोण की अखण्डता को कायम रखने के लिए ऐसा करते हैं। नाजी इस प्रकार की रक्षा के उदाहरण हैं परन्तु इस प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। श्रेष्ठता रक्षा का दूसरा रूप है। यह अपनी संस्कृति का एक सकारात्मक मूल्यांकन है पर इसका अर्थ दूसरी संस्कृति को बदनाम करना या हीन बताना नहीं है। रक्षा (या प्रतिरक्षा) का तीसरा रूप परावर्तन है। ऐसा करना अपनी संस्कृति को बदनाम करना तथा दूसरे की संस्कृति को उत्तम मानना है।

न्यूनीकरण संस्कृतिनिष्ठता का तीसरा चरण है। इसमें लोग अपनी संस्कृतियों की असमानता को उनकी संस्कृतियों की समानता में छिपाने का प्रयत्न करते हैं। सम्पूर्ण मानवता में बसी सार्वभौमिक विशेषताओं की कल्पना करना 'न्यूनीकरण' का एक भाग है। हालांकि इस प्रकार की यह कल्पना प्रबल संस्कृति द्वारा ही की जाती है। 'सार्वभौमिक सत्य' की धारणा भी अपने संस्कारों पर ही आधारित होती है।

रूढ़ियाँ

रूढ़ियाँ भी अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण में बाधाएँ खड़ी करती हैं। 'समोवर' और 'पोर्टर' ने रूढ़ियों को परिभाषित किया है – 'पूर्व निर्धारित मान्यताओं विचारों तथा रवैयों के आधार पर किसी व्यक्ति या समुदाय के प्रति कोई धारणा, बोध या विश्वास।' रूढ़ियाँ अचानक नहीं बनतीं परन्तु वे संस्कृति द्वारा समय के साथ-साथ विकसित होती हैं। ये हमारे आसपास घट रही घटनाओं के निर्धारित और संरक्षित सूचनाओं के अंशों एवं टुकड़ों से मिलकर बनी हैं। रूढ़ियाँ सकारात्मक भी हो सकती हैं और नकारात्मक भी। वे हमें दुनिया के लोगों या घटनाओं को समझने तथा विश्लेषित करने में मदद करती हैं। इनके द्वारा हमें लोगों या घटनाओं को वर्गीकृत करके उन्हें समझने तथा विश्लेषित करने में मदद मिलती है।

अक्सर रूढ़ियाँ समस्यात्मक होती हैं क्योंकि वे ऐसे विचार या दृष्टिकोण हैं जो जरूरत से ज्यादा सरलीकृत, सामान्यीकृत तथा बढ़ा-चढाकर कहे गए होते हैं। 'अमेरिकी ऐसे होते हैं' या 'एथलीट वैसे नहीं होते' या 'महिलाओं को....होना चाहिए', – ये रूढ़ियाँ हैं क्योंकि ये धारणाएँ उन विश्वासों पर टिकी होती हैं जिनमें पूरी सच्चाई नहीं होती तथा वे विकृत तथ्यों पर आधारित होती हैं।

पूर्वाग्रह

पूर्वग्रह भी या तो सकारात्मक हो सकते हें या फिर नकारात्मक। यद्यपि इसकी सामान्य परिभाषा है 'किसी दूसरे व्यक्ति या समुदाय के प्रति अनुचित, पक्षपातपूर्ण तथा कट्टर धारणा, केवल इसलिए कि वे किसी खास नस्ल, धर्म, जाति, राष्ट्र या दूसरे समुदाय के हैं। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति यह सोचता/ती है कि 'मैं नहीं चाहता/ती कि किसी समुदाय या राष्ट्र का व्यक्ति मेरे पड़ोस में रहे, तो यह पूर्वग्रह है।

पूर्वाग्रह कई प्रकार के हो सकते हैं। उन्हें कभी कभार ढूंढ निकालना काफी मुश्किल होता है तो कभी वे काफी स्पष्ट होते हैं। 9/11 के बाद सम्पूर्ण दिशा में एक खास समुदाय के प्रति जो धारणा बनी वह पूर्वाग्रह का एक जीवन्त उदाहरण है जिसने विश्व में अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण को काफी प्रभावित किया है।

भाषा

भाषा भी अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण की प्रमुख बाधाओं में से एक है। परन्तु यह संभवतः सबसे मूलभूत नहीं है। जिन व्यक्तियों की भाषा एक (समान) नहीं होती या जिनकी दूसरी भाषा पर पकड़ नहीं होती उन्हें सम्प्रेषण में काफी कठिनाइयाँ हो सकती हैं। जिन व्यक्तियों की भाषा एक नहीं होती उनके बीच गलत फहमियाँ भी पैदा हो सकती है। हालांकि केवल समभाषी होने से ही लोग एक दूसरे को समझ जाएं, यह आवश्यक नहीं है। यहाँ तक कि एक ही भाषा को बोलने वाले व्यक्ति भी प्रयुक्त शब्दों का अर्थ कभी-कभार नहीं समझ सकते। यहाँ तक की दो संस्कृतियों की भाषा समान होने पर भी वे हमेशा एक दूसरे को नहीं समझ सकते हैं।

शाब्दिक, मुहावरेगत, भावात्मक तथा धारणात्मक समतुल्यता ढूँढना अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण की मुख्य चुनौतियाँ हैं। इनसे सामना तब होता है जब हम दो भाषाओं के बीच सांस्कृतिक सम्प्रेषण को सरल बनाने के लिए एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते हैं।

अमौखिक सम्प्रेषण

भाषा-रहित सम्प्रेषण अमौखिक सम्प्रेषण कहलाता है। यह शारीरिक संकेतों, शारीरिक मुद्राओं, नेत्र संचालनों तथा चेहरे के भावों, सामीप्य आदि से होता है। यदि हम इनकी सांस्कृतिक संरचना से अनभिज्ञ हैं तो इनकी गलत व्याख्या भी हो सकती है। अलग-अलग संस्कृतियों में अमौखिक सम्प्रेषण के अलग-अलग अर्थ होते हैं। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

i) किसी अपरिचित के साथ बात करते समय दूरी बनाना अलग-अलग संस्कृतियों में अलग-अलग होता है। यदि उनमें से कोई एक इस नियम को तोड़े तो दूसरा असहज हो सकता है।

ii) शारीरिक संकेत तथा नेत्र संचालन बहुत प्रभावशाली होते हैं, पर ये भिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग अर्थ रखते हैं। कुछ संस्कृतियों में हाथ मिलाकर अभिवादन किया जाता है, कहीं-कहीं सिर झुका के, कहीं गले मिलकर तो कहीं हाथ जोड़कर अभिवादन किया जाता है।

iii) कुछ संस्कृतियों में समय को चक्रीय तो कुछ में रेखीय माना जाता है। समय के प्रयोग में भी भिन्नता होती है।

iv) मौन के भी अलग-अलग संस्कृतियों में अलग-अलग अर्थ होते हैं। किसी किसी संस्कृति में इसका अर्थ सम्मान देना होता है, कहीं इसका अर्थ संकोच जताना तो कहीं कठोरता या अभद्रता व्यक्त करना होता है।

v) स्पर्श के भी अलग-अलग संस्कृतियों में अलग-अलग अर्थ होते हैं। उदाहरण के लिए, थाईलैण्ड में बच्चों के सिर पर हाथ रखना बहुत अशिष्ट या अभद्र माना जाता हैं क्योंकि सिर को आत्मा या जीवात्मा का निवास-स्थान माना जाता है, जबकि पश्चिम में यह काफी हद तक स्वीकार्य है क्योंकि वहाँ पर इसका अर्थ बच्चे के प्रति स्नेहभाव प्रकट करना है।

2.3.2 अनुवाद एवं अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण

अनुवाद अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह ध्यान रखने योग्य है कि अनुवाद-प्रक्रिया में केवल शब्दों का अनुवाद ही नहीं बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों का भी अन्तरण करना होता है। जब हम किसी अन्य संस्कृति की भाषा को अपनी भाषा में अनूदित करते हैं तो उस भाषा के तथ्य को सटीक रूप में अन्तरित करने के लिए उस संस्कृति को समझना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए अन्य संस्कृति की शब्दावली, मुहावरों तथा भावनात्मक एवं धारणात्मक समतुल्यों का जानना आवश्यक हो जाता हैं। वे लक्ष्यभाषा में शारीरिक संकेतों तथा शारीरिक हाव-भाव के समतुल्य ढूँढने जितने ही आवश्यक हैं। शाब्दिक अनुवाद करने से अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

शाब्दिक अनुवाद की कुछ त्रुटियाँ नीचे दी गई हैं :

ताईवान में पेप्सी के स्लोगन 'Come alive with the pepsi generation' का अनुवाद इस प्रकार किया गया – 'पेप्सी आपके मृत पूर्वजों को जीवित कर देगा।'

स्विस रेस्तरां के एक मैन्यू में – 'हमारी वाइन आपको निराश कर देंगीं।'

हांगकांग के दंत चिकित्सक के पास – 'यहाँ नई तकनीक से दाँत उखाड़े जाते हैं।'

कॉपेनहेगन हवाई कार्यालय में – 'हम आपके बैग लेकर उन्हें सभी दिशाओं में भेज देते हैं।'

बुकारेस्ट होटल लॉबी में, – 'यह लिफ्ट अगले दिन के लिए तैयार की जा रही है। इस दौरान, हमें खेद है कि आपको नहीं झेल सकते।'

लक्ष्यभाषा तथा स्रोतभाषा की संस्कृति तथा भाषा से परिचित होने के अलावा दोनों भाषाओं को बिना पूर्वाग्रह के तथा रूढ़िवादी हुए बिना समझने की जरूरत है। संस्कृति को समझने के लिए जो बाधाएं ऊपर वर्णित हैं उनसे पूरी तरह निपटना आवश्यक है तभी स्रोतभाषा के कथ्य को लक्ष्यभाषा में पूरी तरह अन्तरित किया जा सकता है।

2.4 सारांश

इस इकाई में हमने संस्कृति एवं सम्प्रेषण की चर्चा की। अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण एवं अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण की परिभाषाओं पर विस्तार से विचार किया गया। सांस्कृतिक सन्दर्भों को जाने बिना शाब्दिक अनुवाद किस प्रकार नुकसान पहुँचा सकता है, इसके भी कुछ रोचक उदाहरण दिए गए।

यहाँ तक कि अन्तःसांस्कृतिक पाठों का अनुवाद करते समय भी शब्दों, लाक्षणिक प्रयोगों और मुहावरों का सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ जानना आवश्यक है। स्रोतभाषा के साथ-साथ लक्ष्यभाषा के भी अमौखिक सम्प्रेषण, संस्कार, प्रत्यक्ष ज्ञान और आस्थाओं से परिचित होना भी जरूरी है।

अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण दो भिन्न संस्कृतियों के बीच होता है और यदि हम जिस व्यक्ति से सम्पर्क कर रहे हैं उसकी संस्कृति से अच्छी तरह परिचित नहीं हैं तो हम उसे पूरी तरह नहीं समझ सकते जिससे गलतफहमियाँ भी पैदा हो सकती है। यद्यपि हम अन्य व्यक्तियों तथा उनकी संस्कृति के प्रति अपनी समझ बढ़ाकर इस तरह की भाषिक एवं सांस्कृतिक त्रुटियों से बच सकते हैं।

अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण का अध्ययन इस आवश्यकता को दो संस्कृतियों या उप-संस्कृतियों के बीच सम्प्रेषण या क्रिया-प्रतिक्रिया की जाँच के माध्यम से पूरा करता हैं। यह एक मूलभूत धारणा है कि संस्कृति के माध्यम से ही लोग एक दूसरे से सम्पर्क करते हैं। एक भारतीय, एक अमेरिकी या एक चीनी एक भारतीय, अमेरिकी या चीनी के तौर पर ही संप्रेषित करना सीखते हैं। उनका व्यवहार एक अर्थ को प्रतिपादित करता है क्योंकि यह अर्जित किया हुआ तथा पारस्परिक है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह संस्कृति है। अतः लोग किस प्रकार व्यवहार करते हैं, किस प्रकार सम्पर्क करते हैं, उनकी भाषा, जीवन-शैली तथा अमौखिक व्यवहार सभी संस्कृति द्वारा निर्धारित होते हैं।

संस्कार, आस्थाएँ, प्रत्यक्ष ज्ञान संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष हैं जिनसे परिचित होना आवश्यक है। परन्तु ऐसे कई अवरोध हैं जो संस्कृति की इन विशेषताओं को समझने में बाधा डालते हैं। संस्कृतिनिष्ठिता, रूढ़ियाँ, पूर्वाग्रह, भाषा, अमौखिक सम्प्रेषण आदि ऐसी ही कुछ बाधाएँ हैं। किसी भाषा को तथा भाषा की संस्कृति को समझने के लिए इन बाधाओं को हटाना आवश्यक है।

जब हम किसी विषम संस्कृति की भाषा को अपनी भाषा में अनूदित कर रहे होते हैं तो उस संस्कृति को समझना हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है ताकि हम उसके कथ्य को अपनी भाषा में सफलतापूर्वक अन्तरित कर सकें। इसके लिए शब्दावली, मुहावरे अनुभावात्मक तथा अवधारणात्मक समतुल्यों को ढूंढना आवश्यक हैं।

2.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण का विश्लेषण कीजिए। इसके विभिन्न पक्षों पर उदाहरण सहित प्रकाश डालिए।

2) हमें अन्तःसांस्कृतिक सम्प्रेषण को समझने की आवश्यकता क्यों है? अनुवाद के लिए यह क्यों महत्वपूर्ण है?

3) अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण क्या है? इसकी विभिन्न विशेषताओं पर उदाहरण सहित प्रकाश डालिए।

4) अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण में क्या-क्या बाधाएं हैं? अनुवाद की प्रक्रिया में इन्हें ध्यान में रखना क्यों आवश्यक है?

2.6 शब्द सूची

- **प्रत्यक्ष ज्ञान** – बाहरी दुनिया से सूचनाओं के अवलोकन, चयन, ग्रहण तथा उन्हें संगठित या व्यवस्थित करने की प्रक्रिया प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाती है।
- **संस्कृतिनिष्ठता** – अपनी संस्कृति की केन्द्रीयता में विश्वास।
- **रूढ़ियाँ** – किसी व्यक्ति या समुदाय के प्रति अति सरलीकृत, सामान्यीकृत तथा अतिशयोक्तिपूर्ण धारणाएँ जो अक्सर सुनी-सुनाई बातों पर आधारित होती हैं तथा जिनमें पूरी सच्चाई नहीं होती।
- **सामीप्य** – निकटता, नजदीकी
- **अनिवार्य** – अति आवश्यक

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Jones, Anna and Quach, Xuan: Inter-cultural Communication.
- Intercultural Communication by Anna Jones and Xuan Quach.
- Gerry and Wilson, Elizabeth: Communication and Culture: A Collection of Observation; The University of Calgary.
- www.kwintessential.co.uk
- http://en.wikipedia.org/wiki/Intercultural_communication
- www.kwintessential.co.uk
- http://en/wikipedia.org/wiki/intercultural_communication

इकाई 3   भाषा एवं सम्प्रेषण व्यवहार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 प्रकृति एवं प्रयोजन

3.3 भाषा एवं सम्प्रेषण-व्यवस्था

3.4 सम्प्रेषण-व्यवस्था एवं संचार तकनीक

3.5 सम्प्रेषण एवं भाषिक व्यवहार

3.6 भाषा एवं सम्प्रेषण व्यवहार

3.7 अनुवाद एवं सम्प्रेषण व्यवहार

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकेंगे :

- भाषा का हमारी संस्कृति से सम्बन्ध;
- भाषा की प्रकृति और प्रयोजन से तात्पर्य;
- सम्प्रेषण व्यवस्था में भाषा की भूमिका;
- सम्प्रेषण व्यवस्था में तकनीकी की भूमिका;
- भाषा और सम्प्रेषण व्यवहार का आपसी सम्बन्ध; और
- अनुवाद और सम्प्रेषण व्यवहार के बीच सम्बन्ध।

3.1 प्रस्तावना

पिछली दो इकाइयों में हमने संस्कृति और सम्प्रेषण तथा अन्तःसांस्कृतिक तथा अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण पर विस्तार से चर्चा की। प्रस्तुत इकाई में हम भाषा और सम्प्रेषण व्यवहार पर चर्चा करेंगे। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि भाषा सम्प्रेषण व्यवस्था में किस प्रकार अपना रूप बदलती है तथा समाज, संस्कृति एवं प्रयुक्त की दृष्टि से भी भाषा के प्रयोग में किस प्रकार बदलाव आता है जिसके कारण ही सम्प्रेषण की पूरी प्रक्रिया सम्भव हो पाती है।

3.2 प्रकृति एवं प्रयोजन

मानव जाति की सबसे अमूल्य सम्पदा – भाषा हमारी संस्कृति एवं जीवन-जगत से जुड़ी हुई है। सामाजिक यथार्थ और संस्थागत प्रतीक के रूप में भाषा, भाव-बोध एवं सम्प्रेषण का वह महत्वपूर्ण साधन है जो हमारी सामाजिक अस्मिता एवं जातीय परम्परा का सशक्त माध्यम भी है। अपनी प्रकृति में जटिल एवं प्रयोजन में बहुमुखी भाषा हमारे निजी अनुभवों-विचारों एवं सामाजिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का साधन है, साथ ही वह चिन्तन-प्रक्रिया के रूप में हमारे मानसिक व्यापार का आधार और सम्प्रेषण-व्यवहार का साधन भी है। भाषा की संरचना जहाँ

व्याकरण के घटकों में सम्बन्ध-स्थापन का कार्य करती है, वहीं सामाजिक-स्थितियाँ भाषा प्रयोग को नियंत्रित करती हैं। अन्य विधाओं के लिए संगत एवं प्रासंगिक भाषा मनुष्य के सामाजिक-मानसिक जीवन में अपनी महत्ता स्वयंमेव सिद्ध करती है। भाषा-प्रयोग में उपस्थित ध्वनि-प्रतीकों को दूसरे लोग कैसे स्वीकार अथवा व्याख्यायित करते हैं, यह महत्वपूर्ण तथ्य ही सम्प्रेषण का विस्तृत सन्दर्भ है। यहीं भाषिक व्यवधान, संदेश की संक्षिप्तता एवं स्पष्टता जैसी समस्याएं भी मिलती हैं। इसी दृष्टि से डेविड क्रिस्टल ने कुछ आधारभूत प्रश्न उठाए हैं, जैसे – भाषा क्या है? उसके वैज्ञानिक अध्ययन का अभिप्राय क्या है? भाषा क्यों जरूरी है? आदि। एवरक्रॉम्बी ने भी वाक् यानी भाषिक-व्यवहार को भाषा का मुख्य और स्वाभाविक माध्यम मानते हुए उसके दृश्य लिखित माध्यम को गौण माना है। मौखिक श्रव्य सरणि के रूप में भाषा का मौखिक रूप ही सार्थक-संभाषण का सशक्त, संवेदनशील और जटिल माध्यम है जिसमें शरीर के सभी भाषागत-भाषेतर अवयव सक्रिय रहते हैं। अर्थ का पूर्ण-बोधन तभी होता है जब हम बातचीत में अपने पूरे शरीर का उपयोग करते हैं। भाषा की अमूर्त, जटिल प्रकृति एवं उसके प्रकार्य-प्रक्रिया की समझ में सहायक सिद्ध होने के साथ भाषा विज्ञान भाषा के स्वायत अध्ययन के माध्यम से देश और व्यक्ति की अपनी पहचान का प्रमाण तथा मानवीय-व्यवहार की सही समझ का सशक्त-दिशारत साधन भी बनता है। संस्थागत दृष्टि से भाषा को देखने का तात्पर्य वस्तुतः उसे 'सम्प्रेषण-क्षमता के प्रयोजन सिद्ध' रूप में देखना (हॉगेन) है। भाषा के सहारे ही 'जातीय पुनर्गठन का इतिहास' भी जाना जा सकता हैं (डॉ. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव)।

भाषा को परिभाषित करते हुए भाषाविदों ने उसके दो आयामों – प्रकृति एवं प्रयोजन का उल्लेख किया है। भाषा की प्रकृति जहाँ जटिल और बहुस्तरीय है, वहीं समाज से उसका जुड़ाव उसे अपने प्रयोजन में बहुमुखी बनाता है। 'वागेन्द्रिय-निसृत यादृच्छिक रूढ़िगत ध्वनि-प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था' के रूप में परिभाषित भाषा द्वारा ही एक भाषा-समुदाय के लोग अपने विचारों तथा अनुभवों का आदान-प्रदान करते हैं। भाषा का यह प्रयोजनपरक प्रकार्यात्मक पक्ष वक्ता-श्रोता के भूमिका परिवर्तन से जुड़ी संवादिता की स्थिति द्वारा उनकी सामाजिक अस्मिता, पद-प्रतिष्ठा और अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की जानकारी भी देता है। भाषा की प्रकृति संरचनात्मक समरूपी होती है और समाज से जुड़ा प्रयोजनपरक पक्ष विषयरूपी होता है। सस्यूर की 'लाँग-पेरोल' तथा चॉमस्की की 'कॉम्पीटेन्स-परफॉर्मेन्स' युग्मों की संकल्पना में भाषा और उसके अध्ययन के सन्दर्भ में समाज की सत्ता स्वीकार की गई है। भाषा समरूपी मूल्यपरक प्रकृति उसे रूपपरक बनाती है और उसकी विषम-रूपी विकल्पन युक्त प्रकृति व्यवहार में व्यक्त होकर उसकी समूहगत प्रवृत्ति तथा सामाजिक-संस्थागत यथार्थ से जुड़ी व्यवस्था को सामने लाती है। इस प्रकार भाषा एक ओर तो अपने घटकों के परस्पर सम्बद्ध संश्लिष्ट रूप की, दूसरी ओर प्रयोग के धरातल पर अभिव्यक्त सामाजिक सम्बन्धों की द्योतक और तीसरी ओर सम्प्रेषण-प्रक्रिया के रूप में सामाजिक व्यापार का साधन भी होती है। व्याकरण हमें भाषा की अमूर्त-प्रतीकात्मक व्यवस्था का निरूपण करके उसके नियमों की जानकारी देता है। इस जानकारी का पूर्वानुमानित जान-समझ कर ही समस्त भाषिक-व्यवहार चलता है यानी अमूर्त भाषा-क्षमता का मूर्त स्वरूप भाषा-व्यवहार के रूप में प्रतिफलित होता है। वक्ता के अर्थ-सन्दर्भ की जानकारी श्रोता को भी होनी चाहिए, तभी संवाद की स्थिति बनती है। भाषा के अपेक्षित नियमों की व्यवस्था को जानना ही उसकी अगाध संभावना को साधने का तरीका है जिससे भाषा को एक खुला आयाम मिलता है।

समाज-संदर्भित सम्प्रेषण-व्यवस्था के रूप में भाषा के प्रयोजनपरक अध्ययन में वक्ता के अभिप्रेत से जुड़े उक्तिपरक और, अभिवृत्तिवाचक अर्थ को प्रधानता दी जाती है, यही (समाज) भाषा विज्ञान का सही सन्दर्भ माना गया है। भाषा-व्यवहार से सम्बद्ध सम्प्रेषण-क्षमता का तात्पर्य वस्तुतः इस तथ्य से है कि हम कैसे सही समय और स्थान पर सही व्यक्ति से सही बात करें। इसे जानने की अन्तर्ज्ञानपरक (Intuitive) योग्यता, आपसी समझ, प्रयोग के नियमों तथा वक्ता-श्रोता/लेखक-पाठक (साहित्य) के आदान-प्रदान की भूमिका से जुड़ा है। इसका तात्पर्य यह भी है कि सम्प्रेषण-क्षमता सदैव एक सी नहीं होती है; कार्य के परिवेश, व्यवसाय, परिवार, शिक्षा आदि के अनुरूप उसमें परिवर्तन-अन्तर मिलता है। परिवेश से प्राप्त सम्प्रेषण-सम्बन्ध वस्तुतः व्यक्ति के सम्प्रेषण-कौशल एवं व्यवहार से सम्बद्ध रहते हैं। उद्देश्य और परिणाम की दृष्टि से सम्प्रेषण वस्तुतः विकास प्रक्रिया का अनिवार्य अंग होता है। भाषा की प्रकार्यात्मक, सम्प्रेषण-क्षमता के अनुरूप उसे सम्प्रेषण-साधन एवं एक भाषा-समाज के भाषायी कोश का अंग (गम्पर्ज) माना गया है। परिस्थितिगत प्रतिबन्धों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक-कोटियों को व्याख्यायित करने के कारण सम्प्रेषण में सामाजिक नियमों के साथ एक सोपानिक अधिक्रम (गम्पर्ज-डैलहाइम्स) भी मिलता है। भाषा के विविध वैकल्पिक रूप व्याकरणिक विशेषताओं के साथ धर्म, जाति, सामाजिक-आर्थिक पद-प्रतिष्ठा, जैसे अन्य सामाजिक उपादानों की भूमिका को भी महत्व देते हैं। भाषा के सन्दर्भगत अर्थ की महत्ता से हमें बातचीत के

नियमों के महत्व का ज्ञान होता है। वक्ता-श्रोता का वार्तालाप उनके परस्पर सम्बन्धों की अभिव्यक्ति के साथ विषय के प्रति उनकी दृष्टि का परिचय भी (गम्पर्ज़-फर्म्यूसन) देता है। समाज-सापेक्ष प्रतीक-व्यवस्था के रूप में भाषा की सत्ता मानने पर उसकी प्रकृति में अन्तर्मुक्त सामाजिक तत्वों के कारण भाषा मनुष्य और उसके बाह्य वातावरण के साथ मनुष्य और समाज के अन्तःसम्बन्धों की अनिवार्यता से भी जुड़ी रहती है। भाषा-प्रयोजन के आधार पर भूमिका-जन्य भाषा-प्रयोग के नियमों की खोज तथा वक्ता-श्रोता के आपसी सम्बन्धों के आधार पर भाषा-प्रयोग में आने वाली भिन्नता के अध्ययन (हैलिडे) की चर्चा भी की गई है। भाषा और समाज के अन्तःसम्बन्धों को स्वीकार कर लेबॉव ने तो समाज भाषा विज्ञान को ही वास्तविक भाषा विज्ञान माना है।

3.3 भाषा एवं सम्प्रेषण-व्यवस्था

किसी भी भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था, उसकी आधारभूत सारणियां एवं अर्थ-कोटियां एक भाषा-समुदाय की सामाजिक मान्यताओं के साथ उसके व्यवहार का ज्ञान भी देती हैं। इसलिए सामाजिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में मनुष्य के परस्पर आदान-प्रदान की यानी सम्प्रेषण-व्यवस्था के रूप में भाषा-व्यवस्था की परख जरूरी है। सस्यूर की दृष्टि में भाषा-व्यवस्था एक सामाजिक वस्तु है जो स्वायत्त, जीवन्त और परिवर्तनशील होने के साथ एक उच्चतर प्रतीक-व्यवस्था का उपांग भी है। भाषा सस्यूर के लिए समाज-निरपेक्ष और मानव-तटस्थ कदापि नहीं है, वरन् प्रतीक-सिद्ध सामाजिक वस्तु के रूप में भाषा-व्यवस्था सामाजिक अभिलक्षणों एवं प्रकार्यों से युक्त ठोस वास्तविकता है। भाषा का व्यष्टि रूप भाषा-व्यवहार है क्योंकि व्यक्ति ही सन्दर्भ, श्रोता, परिस्थिति आदि के औचित्य का ध्यान रखकर उपलब्ध विकल्पों में से 'चयन-सिद्धान्त' के आधार पर किसी एक का चयन कर भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा का यह वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति पक्ष भाषा सम्प्रेषण में महत्वपूर्ण है। भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार परस्पर सापेक्ष्य संकल्पनाएं हैं क्योंकि अमूर्त भाषा-व्यवस्था व्यक्ति के भाषा-व्यवहार में व्यक्त होती है, वहीं भाषा-व्यवहार की विशिष्ट-मूर्त घटनाएं ही समाज की सामूहिक चेतना को सामान्यीकृत-निर्विष्ट भाषा-व्यवस्था का रूप देती है। मानव—व्यवहार की अन्तर्विनियमता की कुंजी सम्प्रेषण की इसी प्रकृति में निहित है। सोद्देश्य, अर्थज्ञान, परम्परानुमोदित एवं व्याकरण संरचित सम्प्रेषण-व्यवहार के तत्वों में कुछ संकल्पनाएं डैलहाइम्स के अनुसार महत्वपूर्ण है। यथा—भाषा समुदाय (यानी व्याकरणिक नियमों के साथ बोलने, समझने के नियमों की साझीदारी करने वाला हो, और जिनका एक भाषिक क्षेत्र हो); भाषिक स्थितियां (यानी परिस्थितियों से सम्बद्ध पर उनकी अनुपस्थिति से अपनी पहचान कराना); भाषिक घटना (यानी वक्ता विषय और भाषा के अपने चयन को कैसे अन्य प्रतिभागियों और परिवेश के साथ बाँटते हैं); भाषिक क्रिया (यानी वाक्य-स्तर का प्रतिनिधित्व करने वाला अन्य व्याकरणिक स्तरों से असम्बद्ध विशिष्ट स्तर)। संस्कृति-विवेचन के सन्दर्भ में आप प्रभाव, चिन्तन और व्यवहार की साझेदारी के तरीकों की, परिवेश की भिन्नता (Variability) को कम करने की, सोपानिक चरणों में प्राप्त सजगता की, व्यक्तित्व को सुनिश्चित रूप देने के तरीकों की तथा मूल्य अभिप्रेरण के अभिविन्यास की चर्चा करते हैं। बँधे-बँधाए नियमों से नियंत्रित न होकर सम्प्रेषण के प्रथम चरण में वक्ता अपने बाह्य परिवेश से अभिप्रेरणा लेता/ती है, अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत इतिहास, वार्तालाप के प्रतिभागियों से जुड़े तथ्यों के अनुरूप मूल्यांकन के बाद चयन करता/ती है जो 'नॉर्म' की निश्चित परिस्थिति के अनुसार नियंत्रित होता है। वक्ता वार्तालाप के 'मोड' (Mode) को स्थिति-विशेष के साथ कैसे जोड़ता/ती है; विषय या संदेश की रचना वह कैसे करता/ती है, विशेष 'सेटिंग'/गतिविधि से कैसे सम्बन्ध स्थापित करता/ती है; ये सभी तथ्य वार्तालाप के नियमों का आधार है। समाज के सदस्यों की अभिवृत्ति और ज्ञान से भी इसका सम्बन्ध रहता है। उक्ति वैचित्र्य यानी गतिविधि के विभिन्न क्षेत्रों के भाषा-रूपों में 'शिफ्ट' करना भी इसी के अन्तर्गत आता है।

भाषा और समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्धों में प्रभाव की दृष्टि से मानव की प्रतिष्ठा असंदिग्ध है। साथ ही भाषा के प्रति सजग भाव रखना सम्प्रेषण की सफलता के लिए आवश्यक है। दो या अधिक लोगों का एक-दूसरे के और सामाजिक परिवेश के प्रति सम्मानजनक व्यवहार सामाजिक व्यवहार कहलाता है। समूह के शक्तिशाली प्रभाव के कारण ही व्यक्ति से सम्बद्ध व्यवहार सामाजिक नियमन को द्योतित करता है; समूह प्रजनित वस्तुओं (Variables) का परीक्षण समूहगत व्यवहार की समानताओं की पहचान और परख संभव बनाता है। अपने व्यवहार की प्रकृति (Properties) का विश्लेषण भाषायी कोश और भाषिक-व्यवहार के साथ सामाजिक सुदृढ़ीकरण

(reinforcement) का ज्ञान भी देता है। इस दृष्टि से यह तथ्य भी महत्वपूर्ण होता है कि समाज में हमारी कितनी गहरी पैठ है। सम्प्रेषण-व्यापार के साधन रूप तत्व हैं सन्दर्भगत औचित्य की दृष्टि से भाषा की सम्प्रेषण संभावना का उपयोग, जातिगत विशेषता से संयुक्त अनुकरण का भाषिक सर्जनात्मक रूप, विशेष भाषा समाज का कौशल-अर्जित प्राकृतिक सहज भाषा-रूप। भाषा का सहज ज्ञान ही सम्प्रेषण-क्षमता है जहाँ भाषा के नियम जानने के साथ उसके प्रयोग-सन्दर्भ के लिए आवश्यक समाजगत औचित्य का ज्ञान भी जरूरी होता है।

संवादिता की स्थिति की मांग करने वाली 'वार्तालाप' की अवधारणा सम्प्रेषण-व्यापार का केन्द्रीभूत तत्व है। वार्तालाप का सन्दर्भ यह मांग करता है कि विषय और भाषिक विकल्पों में से वक्ता किसी एक का चयन करे और खुद को अन्य प्रतिभागियों और उनके वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयास करे। वक्ता के प्रति दूसरों की प्रतिक्रिया किस रूप में होती है यह देखना भी जरूरी होता है। प्रमुख संकेत प्रणाली के रूप में भाषा सम्प्रेषण का प्रमुख साधन है जिसके तीन आधारभूत तत्व हैं – स्त्रोत/source यानी प्रेषक; प्रेषित संदेश/ message; और संदेश का उद्दिष्ट ग्राहक। भाषिक-व्यवहार के लिए संचार-तकनीक भी जरूरी है। वक्ता के कोडीकरण का प्रधान तत्व संदेश है, वार्तालाप में तथ्य कैसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कथन में प्रस्तुत किए जाते है यह महत्वपूर्ण है। संदेश के सम्प्रेषण से सम्बद्ध सैटिंग (यानी सम्प्रेषण व्यापार का स्थान और समय) और 'सीन' (यानी वार्तालाप के अवसर की सांस्कृतिक समझ का मानसिक पक्ष) का भी अपना महत्व है। सम्प्रेषण के लक्ष्य को जानना भी जरूरी होता है। पर इसके लिए प्रतिभागी वक्ता-श्रोता को (interpretation) के 'नॉर्म' की जानकारी होना जरूरी है। वस्तुतः वक्ता द्वारा संदेश का सम्प्रेषण और श्रोता द्वारा उसका अधिग्रहण कई तत्वों से प्रभावित होता है। इनमें तीन प्रमुख तत्व हैं -: (i) आर्थी तत्व जिसके सामान्य (denotative) और विशिष्ट (implied conotative) दो रूप हैं; (ii) अमूर्तता (abstraction) और अनुमान (inference); और (iii) सामाजिक बोध (social cognition)।

भाषा की सम्प्रेषण-व्यवस्था को व्यापक प्रसंग में देखने पर भाषा-विशेष के भेद और विकल्पन के साथ दो भाषाओं में परस्पर भेद करते हुए सम्प्रेषण-लक्ष्य एवं सम्प्रेषण प्रकार के आधार पर भी भाषा की सामाजिक अर्थवत्ता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। स्टिवर्ट ने भाषा की आंतरिक-व्यवस्था और प्रकृति के आधार पर भाषा-प्रकार (types) और भाषा-प्रयोजन का तथा सामाजिक प्रयोग के आधार पर भाषा-प्रयोग के सन्दर्भ और भाषा-भेदों का वर्गीकरण किया है। ऐतिहासिकता (यानी भाषा प्रयोग-प्रक्रिया का परिणाम है या नहीं); मानकीकरण (यानी भाषा सीखने और औपचारिक स्तर पर भाषा के प्रयोगकर्ता के लिए कोई व्याकरणिक या कोडबद्ध नियमावली ली गई है या नहीं); जीवन्तता (यानी भाषा को व्यवहार में लाने वाला कोई भाषा-भाषी समाज है या नहीं); तथा स्वायत्तता (यानी प्रयोग के सामाजिक प्रकार्य में भाषा किसी अन्य भाषा की मुखापेक्षी है या नहीं); इन चार लक्षणों के आधार पर स्टिवर्ट ने सात भाषा-प्रकार बताए हैं – मानक (standard) भाषा, वरेण्य (classical) भाषा, अवभाषा (vernaculars), क्रिओल (creole), पिजिन (pidgin), कृत्रिम (artificial) भाषा, और बोली (dialect)। भाषा-प्रकार्य के आधार पर भी आपने भाषा के सात प्रयोजन सिद्ध रूपों का उल्लेख किया है : (official) भाषा, वर्ग (group) भाषा, सम्पर्क भाषा (language of wider Communication), शैक्षिक (educational) भाषा, साहित्यिक (literary) भाषा, धार्मिक (religious) भाषा, और तकनीकी (technical) भाषा।

3.4 सम्प्रेषण-व्यवस्था एवं संचार तकनीक

विवेचकों ने संचार-तकनीक के सन्दर्भ में जन-संचार के तीन प्रमुख तत्वों का उल्लेख किया है – वक्ता का चरित्र (ethos), तर्क शक्ति एवं वाणी की प्रामाणिकता (logos), और श्रोता में होनेवाली भावात्मक प्रतिक्रिया (pathos) और संचार मॉडल भी तीन प्रकार के हैं – मानसिक (mental), प्रतीकात्मक (symbolic) और भौतिक (physical)। प्रतीकात्मक मॉडल के तीन रूप मिलते हैं – गणितिक (mathematical), बोधात्मक (cognitive) और वाचिक (verbal)। भौतिक मॉडल के दो रूप iconic और रेखीय (analogue) मिलते हैं। यहां दो तरह के सम्प्रेषण सिद्धान्तों – रेखीय और चक्रीय का उल्लेख भी मिलता है।

(i) रेखीय क्रम (Linear Order) वाले सिद्धान्त में वक्ता (speaker) → संदेश (message) → श्रोता (receiver) का यही अनुक्रम इसे इकहरा मॉडल बनाता है। एरिस्टोटल के मॉडल में एक क्रमिक-संयोजन में हम वक्ता/speaker, वाक्/speech, श्रोता, प्रभाव/effect और अवसर/occassion की स्थिति देखते हैं। फीडबैक के अभाव में यह मॉडल अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण के अनुपयुक्त और मात्र जन से सम्बद्ध भाषण आदि के सन्दर्भ में संगत सिद्ध होता है। वार्तालाप की संकल्पना के लिए 'फीडबैक' को जोड़ना अनिवार्य था, क्योंकि यहां सम्प्रेषण को 'क्रिया-कलाप' (Act) के रूप में देखा गया। निम्नांकित आरेख प्राथमिक अवधारणाओं को स्पष्ट करते हैं :

(i)

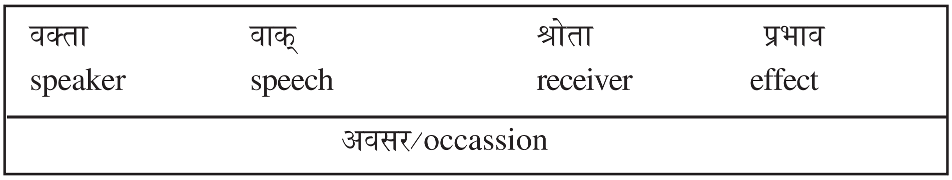

(ii)

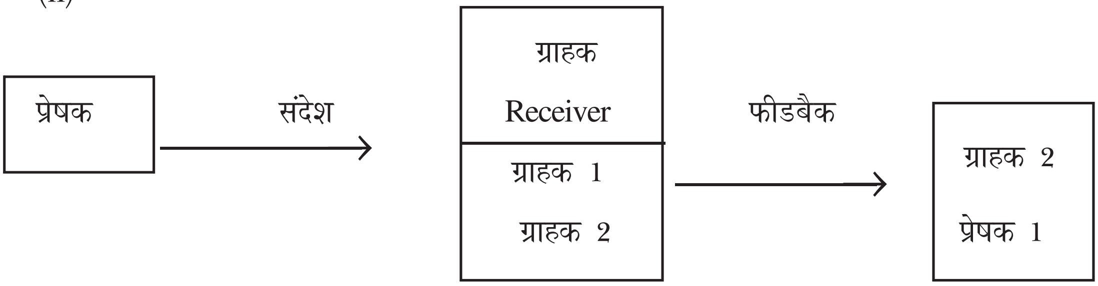

(ii) चक्रीय (Circular) क्रम में सम्प्रेषण में कई तत्वों की सक्रियता के कारण उसे प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। यहाँ अर्थ को उसके श्रोता ग्राहक की प्रकृति (Properties) से जोड़ा गया है। क्योंकि श्रोता अर्थ को अपने प्रतीकत्मक परिवेश से जोड़कर उसे व्याख्यायित करते हैं। यहाँ संदेश की अपेक्षा प्रतीकों के सम्प्रेषण पर बल दिया गया है। सम्प्रेषण में वक्ता-श्रोता के बीच संदेश की स्थिति अर्थ तक सीमित न रहकर उनके बीच की साझेदारी (sharing) की सामाजिक प्रक्रिया को भी समेट लेती है। इस साझा प्रतीकात्मक परिवेश से ही वक्ता-श्रोता के सामाजिक सम्बन्धों का पूर्वानुमान होता है। साथ ही सामाजिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहन भी मिलता है। सम्प्रेषण की भाषा के साथ प्रयोक्ता की शारीरिक गतिविधियों से भी सांस्कृतिक सूचना मिलती है और वे भी संदेश का अनिवार्य अंग बन जाते हैं। लक्ष्य के प्रति वक्ता भी अभिप्रेरणा की विद्यमानता सम्प्रेषण बनाती है। यहां सम्प्रेषण दोहरी प्रक्रिया के रूप में सामने आता है क्योंकि वक्ता-श्रोता दोनों की उपस्थिति के साथ उनकी प्रतिभागिता भी अनिवार्य है। इस सम्प्रेषण-प्रक्रिया में पांच तत्वों की उपस्थिति अनिवार्य है – (1) स्त्रोत (source) यानी कौन बात कर रहा/ही है। यहां वक्ता की ...... (readibility) के साथ श्रोता की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की जानकारी संदेश को प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यक है। (2) संदेश (message) यानी वक्ता क्या कह रहा/ही है। संदेश के अपने कोड, कथ्य और शैली का सम्बन्ध भौगोलिक-सांस्कृतिक क्षेत्र के साथ रहता है। (3) सरणि (channel) का तात्पर्य है वक्ता के संदेश को श्रोता द्वारा मात्र भाषा के माध्यम से नहीं, वरन् अपने सभी इंद्रिय-बोध से ग्रहण करना। (4) ग्राहक (receiver) अपनी ग्राहक-शक्ति से अपनी विशेषताओं को प्रदर्शित करते है; संदेश के प्रत्युत्तर से उसके प्रभाव का द्योतन होता है। स्थिति (situation) का सम्बन्ध संदेश के प्रभाव से जुड़ा, अतः महत्वपूर्ण है। (5) फीडबैक (feedback) भी संलाप का प्रमुख तत्व है जहाँ वक्ता के प्रति श्रोता की प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति वार्तालाप की कड़ी को बनाए रखती है। इस तथ्य का उल्लेख भी किया गया है कि इस पूरे सम्प्रेषण व्यापार में विघ्न (noises) तीन रूपों में आ सकते है – बाह्य जगत के भौतिक रूप से; अपंगता या बीमारी जैसे शारीरिक पक्ष से; अधिकार या अहंकार जैसे मानसिक पक्ष से। इसके अतिरिक्त सन्दर्भ (context) भी संदेश को भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि कई आयामों पर प्रभावित करता है। इस पूरी-प्रक्रिया को निम्नांकित आरेख स्पष्ट करता है:

(iii)

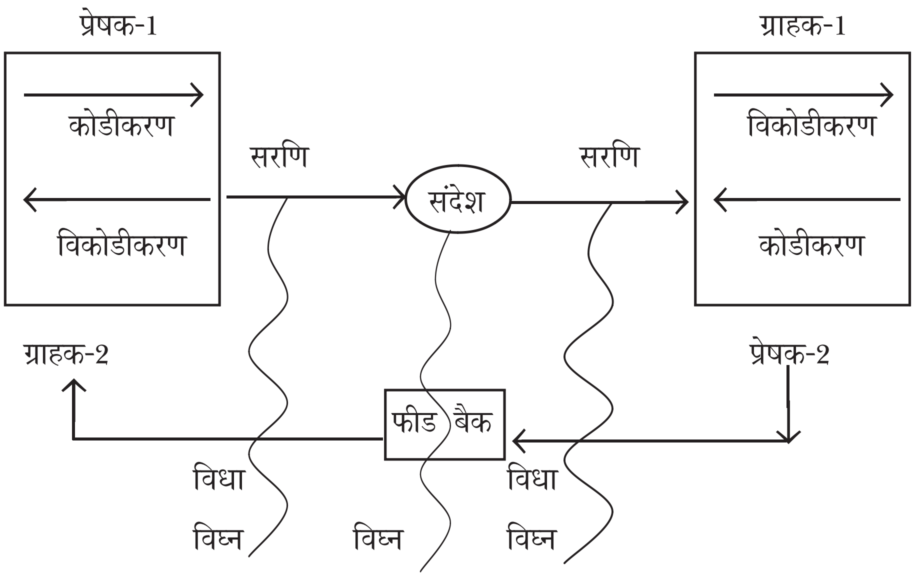

सम्प्रेषण-तंत्र को पूर्णता में प्रदर्शित करने वाला (Shannon and Weaver) मॉडल इस पूरी प्रक्रिया को निम्नांकित आरेख द्वारा दर्शाता है :

(iv)

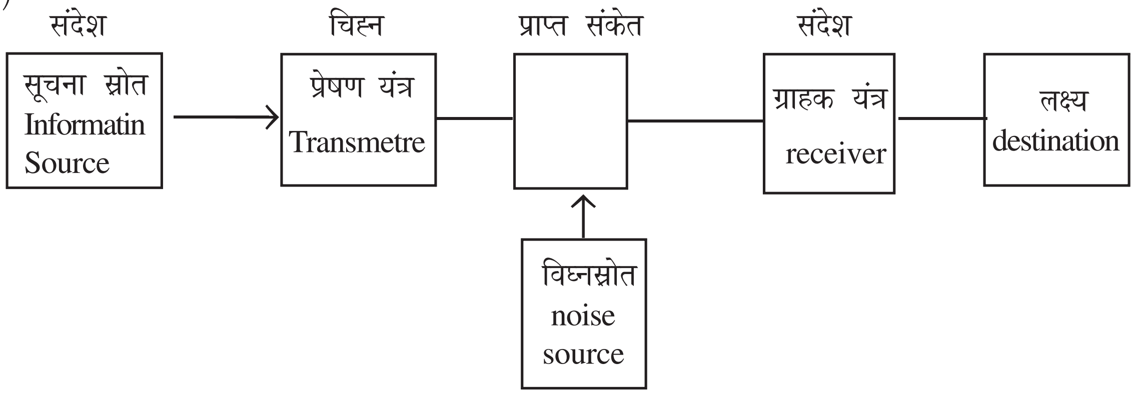

सम्प्रेषण-घटक (componants) की चर्चा में पांच तत्वों की सत्ता का उल्लेख किया गया है – (1) कौन (यानी नियंत्रित विश्लेषण से सम्बन्धित वक्ता); (2) क्या कहता/कहती है (यानी कथ्य का विश्लेषण) कैसे किस सरणि से (इसका सम्बन्ध जन-संचार/ मीडिया विश्लेषण से है); (4) किससे (यानी श्रोता/दर्शक विश्लेषण); (5) प्रभाव (यानी किस ढंग का प्रभाव पड़ा है; प्रभाव-विश्लेषण) यह मॉडल (Leswell) सम्प्रेषण अंग एवं शोध क्षेत्र के दो वर्गों का उल्लेख है:

क्रम संख्या	सम्प्रेषण घटक/Componants	शोध क्षेत्र/Research Area
1.	कौन/Who	नियंत्रण विश्लेषण/Control Analysis
2.	क्या/Says what	कथ्य विश्लेषण/Control Analysis
3.	कैसे/In what channel	जनसंचार विश्लेषण/Media Analysis
4.	किससे/To whom	श्रोता/दर्शक विश्लेषण/Audience Analysis
5.	कैसा प्रभाव/With what effect	प्रभाव विश्लेषण/Effect Analysis

सम्प्रेषण तकनीक के छह प्रकार्यों का उल्लेख किया गया है। इनमें तीन प्रकार्य – सूचना (Information), शिक्षा (Education) और संस्कृतिपरक सम्प्रेषण (Communication with cultural matrix) – व्यक्त (Explicit) माने गए हैं। शेष तीन प्रकार्य – अभिप्रेरणा (Motivation), मनोरंजन (Entertainment) और असंतोष (Discontent) – अव्यक्त (Implicit) कहे गए हैं। सम्प्रेषण सिद्धान्त के अनुसार परिस्थिति-विशेष में लोग परस्पर कैसे बातचीत करते हैं, इसे पांच वर्गों में रखना सम्भव है – (1) जनसंचार/Mass communication, (2) लोक संचार/Public

Communication; (3) लघु-समुदाय संचार/Small group communication; (4) अन्तर्वैयक्तिक संचार/Interpersonal Communication और (5) अन्तः वैयक्तिक संचार/Intrapersonal communication.

3.5 सम्प्रेषण एवं भाषिक व्यवहार

सम्प्रेषण का प्रमुख और आधारभूत साधन भाषा है अतः ब्लूमफील्ड और सस्यूर जैसे भाषा अध्ययन के प्रवर्तकों ने भी भाषा की दृष्टि से सम्प्रेषण संचार के अपने-अपने मॉडल प्रस्तुत किए हैं। ब्लूमफील्ड का मॉडल जहाँ संचार-तकनीक के अनुरूप सम्प्रेषण पर बल देता है, वहां सस्यूर ने भाषा को प्रमुख मानते हुए केवल सम्प्रेषण को ही ध्यान में नहीं रखा है।

ब्लूमफील्ड के व्यवहारवाद पर आधारित सम्प्रेषण-व्यवस्था-मॉडल के मूल में 'उत्प्रेरणा-अनुक्रिया' की अवधारणा स्थित है। सामान्यतः यहाँ पहले वाणी द्वारा वक्ता की उत्प्रेरणा (s) श्रोता तक पहुंचती है (s→r); तदनन्तर श्रोता में अनुक्रिया (r) जाग्रत होती है (s→r)। यहां तीन तथ्य महत्वपूर्ण हैं – (1) वाणी या उच्चारण-पूर्व की व्यावहारिक घटन जैसे भूख लगना, सेब देखना और उसे पाने की इच्छा होना। (2) वाणी या उच्चारण-अवयवों की सहायता से बोलकर भूख लगने की बात कहना, यानी वक्ता की उत्प्रेरणा का वाणी के रूप में प्रतिफलित होना। (3) अनुक्रिया (r) पक्ष से सम्बद्ध यह पक्ष उच्चारण के बाद की व्यावहारिक घटनाओं से सम्बद्ध है। यथा-वक्ता की बात सुनना, सेब देखना फिर उसे पेड़ से तोड़ना और वक्ता को देना। बीच के स्तर की कड़ी वस्तुतः पहले और तीसरे तथ्य को जोड़ने का काम करती है। पूरे घटना-क्रम को देखें तो भूखे व्यक्ति द्वारा भोजन-प्राप्ति की इच्छा व्यक्त करने के पहले चरण के तथा भूखे व्यक्ति द्वारा भोजन-प्राप्ति के तीसरे चरण के घटना क्रम में वक्ता की उत्प्रेरणा यानी उसका भूखा होने का सच बताना महत्वपूर्ण है। निम्नांकित आरेख इसका परिचायक है : s→ r→s→r, इस प्रक्रिया में भाषा अपने-आप में महत्वपूर्ण न होकर गौण रहती है, प्रमाण है- पूरी प्रक्रिया अगर एक ही व्यक्ति के माध्यम से खुद पर घटित हो, तो भाषा की आवश्यकता ही नहीं होगी।

सस्यूर के 'व्यक्तिगत-वाचिक-क्रिया' की अवधारणा पर आधारित मॉडल में दो पक्षों की सत्ता मिलती है – मानसिक पक्ष एवं शरीर-क्रियात्मक (Motoric) पक्ष। वक्ता के मस्तिष्क में पहले विचार या संकल्पना प्रकट होती है जिससे मस्तिष्क में पहले से विद्यमान ध्वन्यात्मक-श्रव्य रूप का उद्‌बोधन होता है। इसके बाद ध्वनि तरंगों के माध्यम से वक्ता द्वारा उच्चारित ध्वनि रूप श्रोता के कानों तक पहुँचता है जिससे उसका श्रव्य पक्ष सामने आता है। फिर श्रोता के मस्तिष्क में निहित उसकी संकल्पना से सम्बन्ध-स्थापना के बाद ही वार्तालाप की सही शुरुआत होती है; क्योंकि अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए श्रोता को वक्ता की भूमिका निभानी पड़ती है। वार्तालाप की अवधारणा वस्तुतः वक्ता पक्ष में घटी पूरी प्रक्रिया के पुनः श्रोता में घटित होने पर ही टिकी है, यह स्पष्ट है। यहां शरीर-क्रियात्मक पक्ष वस्तुतः वह प्रेरक पक्ष है जहाँ मस्तिष्क उच्चारण-अवयवों को उच्चारण का निर्देश देता है और भाषा का उच्चारित ध्वनि-रूप सामने आता है। मौखिक-श्रव्य-सरणि के रूप में भाषा की यह संवादिता भाषा के समाजीकरण से भी जुड़ी है। वक्ता के कथ्य के श्रोता द्वारा अधिग्रहण की सम्प्रेषण-प्रक्रिया वस्तुतः ध्वनि और अर्थ के परस्पर सम्बन्ध-स्थापन द्वारा सम्भव होती है। सस्यूर का यह मॉडल सम्प्रेषण के तीन पक्ष हमारे सामने लाता है – (1) श्रव्य-बिम्ब और कल्पना-तत्व के रूप में नितान्त व्यक्तिगत क्रिया का मानसिक पक्ष; (2) शब्द-उच्चारण के रूप में शरीर-क्रियात्मक पक्ष; और (3) ध्वनि तरंग एवं श्रवण-श्रव्य तत्व के रूप में भौतिक पक्ष। सस्यूर की भाषा और वाक् (Langue&Parole) की संकल्पना में भी यही तत्व संस्थित हैं क्योंकि यदि भाषा एक ओर सामान्य सामाजिक परिघटना एवं समाजपरक संकल्पना का पक्ष सामने लाती है तो दूसरी ओर वाक् व्यक्तिगत परिघटना और व्यवहारपरक क्रियात्मक पक्ष की परिचायक है। समाज में विद्यमान भाषा का वाहक पूरा भाषा-समुदाय होता है जिसका परिचय हमें व्यक्ति के भाषिक-व्यवहार द्वारा मिलता है। सस्यूर का यह सम्प्रेषण मॉडल निम्नांकित आरेख द्वारा दिखाया जा सकता है :

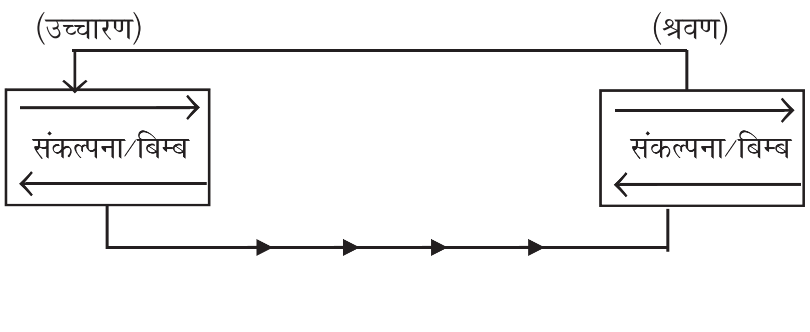

स्पष्टतः सस्यूर का यह मॉडल भाषिक सम्प्रेषण के अधिक निकट है क्योंकि यहाँ वक्ता-श्रोता के भूमिका-परिवर्तन पर टिकी सम्प्रेषण की अवधारणा ही केन्द्रीय धुरी है। उनकी भाषा-वाक् युग्म की संकल्पना में भी यही विशेषता समाज और व्यक्ति की सत्ता को स्वीकार करते हुए उच्चारित रूप में वक्ता के कथन की अभिव्यक्ति के साथ श्रव्य रूप में श्रोता के अर्थ-ग्रहण की पूरी प्रक्रिया को भी समेट लेती है। यह तथ्य भाषा और समाज के प्रगाढ़ सम्बन्ध और उनके केन्द्र में मनुष्य की प्रतिष्ठा को स्वीकार कर सस्यूर की अपनी विशेषता का परिचायक और प्रमाण भी बनता है।

3.6 भाषा एवं सम्प्रेषण व्यवहार

सम्प्रेषण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसका अन्यतम साधन भाषा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिसका अस्तित्व सामाजिक सन्दर्भ की मांग करता है; तदनुरूप ही उसका व्यक्त भाषिक व्यवहार विषमरूपी होता है। भाषा वास्तव में मानव मन की आंतरिक प्रकृति तथा बाह्य यथार्थ के सामाजिक सन्दर्भों की द्वन्द्वात्मक स्थिति का परिणाम कही जा सकती है, परन्तु भाषा स्वयं में कथ्य भी है। इस रूप में वह हमारे सामाजिक अस्तित्व एवं द्वेष का कारण और सामाजिक दाय की सूचक भी है क्योंकि अन्य सामाजिक वर्गों के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति भी भाषा ही है। इसीलिए भाषा-व्यवहार का अध्ययन उन सभी सामाजिक-सांस्कृतिक-वैयक्तिक स्थितियों की जानकारी जरूरी मानता है जिनसे भाषा का प्रयोग नियंत्रित होता है। वार्तालाप में होने वाला वक्ता-श्रोता का भूमिका परिवर्तन वस्तुतः अपने प्रतिभागियों के भाषिक-व्यवहार को स्थिति एवं अवसर के अनुरूप नियंत्रित करता है। मानव-व्यवहार की जटिल प्रक्रिया सतत परिवर्तनशील होती है अतः व्यवहार-व्यवस्था के रूप में मानव-संरचना की संकल्पना की समझ इसके अध्ययन के लिए जरूरी है। स्किनर के अनुसार व्यक्ति की भाषा-सम्बद्ध संकल्पना का प्रभाव उसके व्यवहार, कोड, विचार दर्शन आदि पर पड़ता है साथ ही समाजशास्त्र, नृशास्त्र से सम्बद्ध मनुष्य के तौर-तरीकों (Manners), रीति-रिवाजों (Customs), परम्पराओं (Traditions) आदि से मनुष्य के सामान्य व्यवहार की जानकारी मिलती है। इसे वंशानुक्रमिक प्रक्रिया का (Genetic Process) का परिणाम मानते हुए स्किनर मनुष्य के स्नायुतंत्र (nervous System) से सम्बद्ध इस व्यवहार को देखना-परखना (Observe करना) सम्भव मानते हैं। यह व्यवहार भौतिक आयाम की अनुपस्थिति से मानसिक भी हो सकता है। व्यवहारवाद के S-R सिद्धान्त में उत्प्रेरणा को स्थिति बाह्य-अभिकर्त्ता (Agent) के रूप में रहती है जिससे अनुक्रिया (Response) नियंत्रित होती है। इन दोनों का समूहगत रूप reflex के रूप में व्यक्त होता है। नियंत्रित अनुक्रिया (Conditioned Response) आंतरिक चिन्ताधारा से सम्बद्ध न होकर केवल शरीर-विज्ञान (Physiology) के सिद्धान्त से सम्बद्ध रहती है। उत्प्रेरणा से जुड़ा प्रोत्साहन (Reinforcement) व्यवहार को पुष्ट करता है जिसके पूर्व-परिणाम नियंत्रित होते हैं।

सम्प्रेषण-व्यवस्था के विभिन्न उपादानों की प्रकृति और उनके अन्तस्सम्बन्धों की प्रकृति से भाषा की प्रकृति एवं प्रकार्यों का निर्धारण होता है। भाषा का प्रकार्यात्मक पक्ष सामाजिक एवं वैयक्तिक सन्दर्भों में उसकी विभिन्न भूमिकाओं को स्पष्ट करता है। भाषा का प्रयोग अपने सन्दर्भ और परिस्थिति से अर्थ-ग्रहण करता है जिससे विषय-सन्दर्भ स्पष्ट होता है। वय, लिंग, जाति, धर्म, संस्कृति आदि भी भाषा-व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं। भाषा-समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के बहुमुखी होने से भी व्यवहार के धरातल पर भाषा की विषमरूपता बढ़ती है। एक भाषा-समुदाय के विभिन्न वाक्-रूप (Speech patterns) वस्तुतः वक्ता-श्रोता के सम्बन्ध, आचरण एवं सामाजिक-प्रयोजन के अनुरूप परिवर्तित होते हैं। समाज-नियंत्रित भाषा कोडों में से किसी एक का चयन वक्ता की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की सूचना देता है; इसी से क्षेत्रीय एवं सामाजिक शैलीगत भेद भी मिलते हैं। सामाजिक और भाषिक नियमों से नियंत्रित चयन के मूल में सांस्कृतिक रीति (Mode), सामाजिक रचना (Construct), संदेश-अभिवृत्ति और परिवेश के सम्बन्ध की पहचान देखी जा सकती है। व्यक्तियों के परस्पर अन्तस्सम्बन्धों के योग से सम्भव समानीकरण एवं उसके सिद्धान्तों से ही मनुष्य सामान्य सम्प्रेषण दक्षता प्राप्त करते हैं और प्रतीक-व्यवस्था का पूर्वानुमान कर पाते हैं। व्याकरण की सीमा का अतिक्रमण करके ही एक सामाजिक संस्था संस्कृतिपरक सामाजिक प्रतीक तथा साहित्यिक-जातीय परम्परा के रूप में सिद्ध रहती है।

भाषा के सर्वांगीण और पूर्ण अध्ययन के लिए हमें समाज और सम्प्रेषण से सम्बद्ध तथा व्यवहार में व्यक्त भाषा-भेदों को भी अध्ययन-क्षेत्र में लेना होगा। भाषा के विविध रूपों का अनिवार्य सम्बन्ध सामाजिक बोध और

सामाजिक प्रकार्यों से होता है। भाषा वैविध्य में प्राप्त निश्चित व्यवस्था से बनी उपव्यवस्था सामाजिक अर्थ की अभिव्यक्ति करके भाषा-विकास का साधन बनती है। भाषा व्यवहार के स्तरों और सन्दर्भों में प्रयोक्ता और प्रयोग प्रमुख हैं। वक्ता/प्रयोक्ता के कारण प्राप्त भाषा भेद यानी प्रयोक्ता सापेक्ष विकल्पन से वक्ता के भौगोलिक क्षेत्र और सामाजिक शैक्षिक स्तर की सूचना मिलती है। परिस्थिति एवं सामाजिक दायित्व के अनुरूप भाषा-प्रयोग में प्राप्त भेद यानी प्रयोग सापेक्ष विकल्पन का सम्बन्ध विषय, माध्यम और शैली-प्रविधि से होता है। इसके अतिरिक्त व्यवहार क्षेत्र जैसे बाजार या घर; विज्ञान या कला आदि भी भाषा और उसके व्याकरण के स्वरूप में परिवर्तन लाते हैं। भाषा भेद के ये आधार मानव सम्बन्धों यानी सामाजिक उपवर्गों के व्यवहार क्षेत्र आदि की संकल्पना भी सामने लाते हैं जिसके आधार पर भाषा वैविध्य को व्यवस्थित किया जाता है। भाषा की समाज-सापेक्षता, उसके सामाजिक प्रयोग, सन्दर्भ एवं वैविध्य में एक निश्चित पैटर्न मिलता है। सामाजिक अर्थ की व्यंजना के मूल में वस्तुतः सम्प्रेषण सम्बन्धों, नियमों एवं सामाजिक सन्दर्भों के नियमों की टकराहट की सत्ता विद्यमान रहती है। भाषा-विकल्पन भाषा विकास का प्रभावशाली उपकरण भी है; वह भाषा-व्यवस्था को सम्पूर्णता में देखने का ठोस आधार भी है जिससे भाषा के ऐतिहासिक विकास में प्राप्त अन्तर्विरोधी वक्तव्यों के निराकरण में सहायता मिलती है। भाषा व्यवस्था के साथ भाषा-व्यवहार इस तरह द्वन्द्वात्मक स्थिति में सक्रिय रहते हैं, अपनी स्वायत्तता के बावजूद सम्प्रेषण-व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं से जुड़कर परस्पर अवलम्बित सम्बन्धों की मांग करती है जिससे सह-विकल्पन (Co-vUriation) की संकल्पना सामने आती है, जैसे 'क' का प्रयोग 'ख' के प्रयोग की संभावना बताता है न कि 'ज' के प्रयोग की।

भाषा विकल्पन को निम्नलिखित आरेख द्वारा दिखाया जा सकता है :

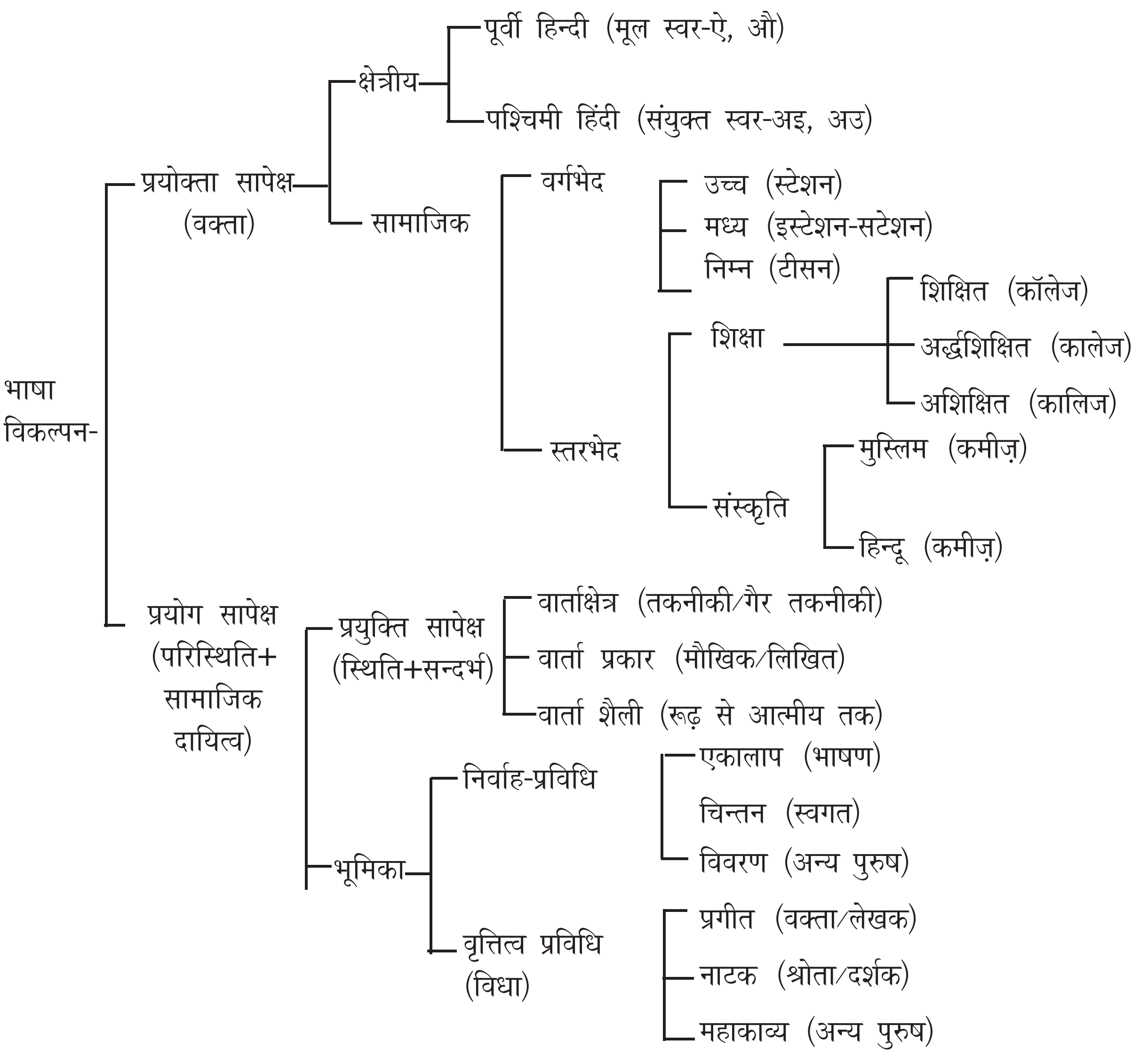

भाषा के प्रयोग और उसके प्रयोक्ता सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि प्रयोक्ता का भाषिक व्यवहार सामाजिक स्थितियों के अनुरूप बदलता है और इससे वक्ता-श्रोता के महत्वपूर्ण आपसी सम्बन्धों का परिचय मिलता है। यहां भाषा का सन्दर्भगत अर्थ एवं वार्तालाप-नियम महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि प्रतिभागियों के आपसी सम्बन्ध, विषय के प्रति उनकी दृष्टि आदि का परिचय देने से यह भाषिक व्यवहार हमारे सामाजिक व्यवहार का प्रतीक भी बनता है।

बहुभाषिकता की समुदायपरक प्रवृत्ति पर बल देते हुए भाषा प्रयोग के निश्चित सन्दर्भ, हर भाषा की एकाधिक शैलियों की सत्ता और हर शैली के विशेष सामाजिक सन्दर्भ की मांग का उल्लेख भी (डा. श्रीवास्तव) किया गया है। बहुभाषी समाज के सन्दर्भ में भाषा-भेद की प्रकृति और उनके प्रयोजन का अपना महत्व होता है; हर भाषा समाज अपने प्रभाव-संचार के लिए इन सभी प्रयोजनबद्ध भाषा-रूपों और शैलियों को अपनाने के लिए विवश होता है। सम्प्रेषण की आवश्यकता से जुड़े ये सभी भाषा-रूप परस्पर इस प्रकार संग्रथित रहते हैं कि इनमें कोड परिवर्तन की प्रक्रिया सहज एवं स्वाभाविक होती है क्योंकि हर भाषा-शैली-रूप अपने निश्चित क्षेत्र के दायित्व का निर्वाह करती हैं। भारतीय भाषाओं की सहिष्णुता उनकी एकता पर बल देती है; यह विशेषता भारतीय भाषाओं की जातीय-सांस्कृतिक चेतना की आंतरिक शक्ति के रूप में विद्यमान है। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्राप्त हिन्दी के – 'पिजिन' रूप मराठी हिन्दी, मद्रासी हिन्दी, बम्बइया हिन्दी या कलकतिया हिन्दी आदि हिन्दी के सम्पर्क भाषा होने के प्रमाण हैं।

वक्ता को भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था के नियमों के साथ उनके प्रयोग सम्बन्धी-समाजगत औचित्य का सहज ज्ञान होना 'सम्प्रेषण-क्षमता' (डैलहाइम्स) है; भाषिक-क्षमता व्यावर्तक होने के कारण व्याकरणिकता की संकल्पना के साथ भाषा प्रयोग सम्बन्धी स्वीकार्यता (Acceptability), औचित्य (Approprialibility) और आवृत्ति (Usability) की अवधारणा को लेना भी जरूरी है। भाषा-क्षमता का तात्पर्य है – समाज द्वारा निर्दिष्ट-सन्दर्भगत औचित्य के साथ वाक्य/भाषा की स्वीकृति की संभावना तथा शैलीपरक विशिष्टता के आधार पर उसे भाषाबद्ध/ कोडीकृत करना। श्रोता को भी इन सभी नियमों की जानकारी होनी चाहिए अन्यथा कथ्य की सार्थकता से वह पूर्णतः परिचित नहीं हो सकेंगे। उचित भाषा-प्रयोग की क्षमता की सीमा में भाषा-व्यवहार भी सिमट आता है और समग्र सामाजिक मानव की अवधारणा में कोड एवं शैली परिवर्तन की दक्षता भी आ जाती है। विभिन्न शैली-समूह के रूप में भाषा का प्रतिफलन मिलता है। भाषायी-समाज की सम्प्रेषण-व्यवस्था एवं व्यवहार को समग्रता में समझने के लिए उसके भाषायी कोश (Verbal repertoire), कोड मैट्रिक्स, कोड एवं शैली परिवर्तन (Switching) की प्रक्रिया को भी लेना होगा। भाषा-व्यवस्था के वैकल्पिक-अवैकल्पिक नियम परस्पर सम्बद्ध होकर स्तरीकृत समाज की सम्प्रेषण-व्यवस्था में ग्रथित रहते हैं, अतः वे व्यवस्थापरक होते हैं।

समाजीकरण की प्रक्रिया से बालक के विभिन्न भाषायी कोडों पर अधिकार पाने के महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख भी (बर्नस्टीन द्वारा) किया गया है। इससे सन्दर्भ-स्थापन की दिशा और महत्व का निर्धारण संभव होता है। किसी भी भाषा का भाषायी कोश अनेक उपव्यवस्थाओं की व्यवस्था के रूप में भाषा के सामाजिक प्रयोजनों, शैलीगत विभेदों एवं स्थानीय रूपों के भेद-प्रभेदों के साथ बहुभाषी समाज की आंतरिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली भाषाओं की चर्चा करता है और प्रयोक्ता को सन्दर्भानुसार चयन की पूरी छूट देता है। भाषा के इन विभिन्न रूपों का समुच्चय ही भाषा का वास्तविक स्वरूप है (पाइक)। उदाहरणार्थ – हिन्दी के बीचम पुरुष सर्वनाम प्रयोगों को देखें तो उनका प्रयोग प्रयोक्ता के सामाजिक-व्यवहार का प्रतीक बनकर उसके व्यवहार में प्रतिफलित होता है। व्याकरणिक एकवचन रूप 'तू' जहाँ धृष्टता, तिरस्कार अथवा आत्मीयता का सूचक है, वहीं व्याकरणिक बहुवचन रूप 'तुम' समानता तथा व्यावहारिक एकवचन रूप का निदर्शक है और व्याकरणिक बहुवचन रूप 'आप' का प्रयोग श्रोता के प्रति सम्मान व प्रतिष्ठा के वाचक रूप में एकवचन प्रयोग के साथ सन्दर्भानुसार वक्ता-श्रोता के व्यक्तिगत सम्बन्धों को दर्शाता है। यही नहीं भाषा के प्रयोजनगत सन्दर्भ और भाषा व्यवहार में अन्तर कर सन्दर्भानुसार विभिन्न भाषा रूपों का प्रयोग देखा जा सकता है। इनके भेदों में सामाजिक सन्दर्भ की अपेक्षा के साथ सामाजिक स्तर का अधिक्रमित रूप भी जुड़ा रहता है। गम्पर्ज (60) और अनवर (71) ने हिन्दी क्षेत्र के सामाजिक प्रयोग से नियंत्रित भाषा-भेद के तीन स्तरों की चर्चा की है : निम्न स्तर पर ग्रामीण/स्थानीय बोली; बीच के स्तर पर प्राप्त हिन्दी की उपभाषाएं और उनके द्वारा निर्धारित मानक बोली रूप; तथा उच्च स्तर पर प्राप्त मानक हिन्दी का

प्रयोग। हिन्दी भाषी समुदाय का भाषायी कोश इस प्रकार सामाजिक संरचना से नियंत्रित एकाधिक कोडों का समूह है। शैक्षिक सन्दर्भ में यहां तीन माध्यम भाषाओं – बोली, हिन्दी और हिन्दी/अंग्रेजी स्तर के प्रयोग का उल्लेख और उच्च स्तर पर प्राप्त हिन्दी की तीन शैलियों – आधारभूत हिंदुस्तानी (HU), आरोपित दो शैलियों – उच्च हिन्दी (HH) और उच्च उर्दू (HU) का उल्लेख इनके लिपिभेद के साथ भी (डा. श्रीवास्तव) मिलता है। निम्नांकित आरेख इस स्थिति को स्पष्ट करता है :

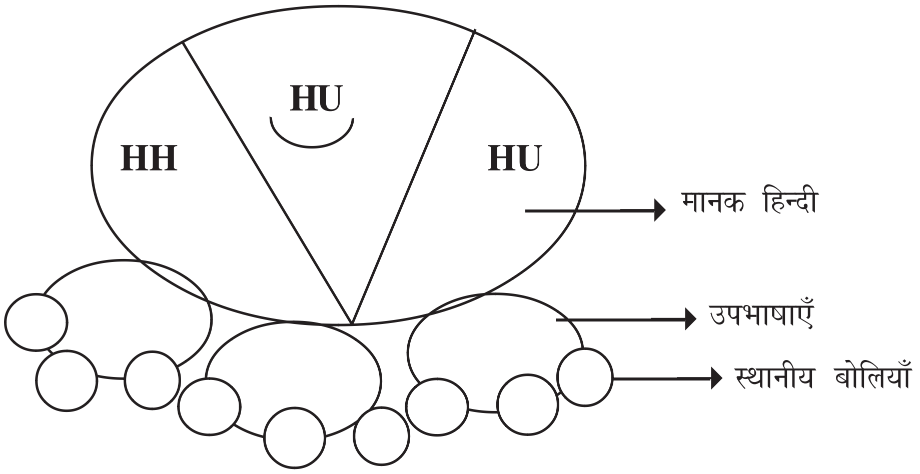

यहां इस तथ्य का उल्लेख भी समीचीन होगा कि उच्चशिक्षा के स्तर पर हिन्दी का एक अंगेजी मिश्रित रूप तथा निम्न स्तर पर हिन्दी के बोली मिश्रित रूप का अस्तित्व भी दिखने लगा है। इन सभी कोडों में परिवर्तन सहज ही होता है। प्रेमचंद के कथा साहित्य में हिन्दी के इन सभी रूपों के उदाहरण मिल जाते हैं। इस दृष्टि से उनकी 'शतरंज के खिलाड़ी' (हिन्दी और उर्दू रूप) तथा 'ठाकुर का कुआँ' कहानियां उल्लेखनीय हैं।

समाज सम्बद्ध भाषा प्रयोग सम्प्रेषण-व्यवहार की मांग है, जहाँ अर्थ की सीमा तक सीमित न रहकर 'कथ्य' पर दृष्टि केन्द्रित रहती है। भाषा के प्रयोजनपरक अध्ययन में वक्ता का अभिप्रेत की जानकारी हम भूमिकाजन्य भाषा प्रयोग के व्यवस्था सापेक्ष नियमों से सामाजिक लक्षणों की पहचान करके ही पा सकते हैं। डॉ. श्रीवास्तव ने 'कल आएं' जैसे सामान्य वाक्य में अर्थ को क्रिया के संभावनार्थ बहुवचन रूप के प्रयोग तक सीमित मान कर, इसका सम्बन्ध वक्ता के अभिप्रेत से भी जोड़ा है। आप इसके तीन अर्थों की अभिव्यंजना तीन आयामों पर सम्भव देखते हैं – (1) सामान्य शाब्दिक अर्थ वस्तुतः कल और आज के संभावनार्थक बहुवचन प्रयोग के वाक्यार्थ का द्योतक है। (2) उक्तिपरक अर्थ वस्तुतः वक्ता के अभिप्रेत से सम्बद्ध है जिसके तीन संभव रूपों का उल्लेख मिलता है – अनुरोधपरक (यानी वक्ता-श्रोता कथन); इच्छापरक (यानी वक्ता-प्रकथन); और प्रश्नपरक (यानी प्रकथन, जहाँ मात्र संभावना व्यक्त है)। (3) अन्तर्वैयक्तिक अर्थ वस्तुतः प्रतिभागियों के सामाजिक सम्बन्धों की प्रवृत्ति को व्यक्त करता है जिससे कथन के प्रति वक्ता की दृष्टि का परिचय मिलता है। उदाहरणार्थ : (आप) 'कल आइए' में श्रोता के सामाजिक पद की श्रेष्ठता व्यंजित है; (तुम) 'कल आओ' में वक्ता-श्रोता की पद-समानता का संकेत है; और (तू) 'कल आ' में श्रोता के निम्न पद प्रतिष्ठा की सूचना मिलती है। हिन्दी के ये तीन सर्वनाम रूप वस्तुतः तीन भिन्न दृष्टियों का ज्ञापन करते हैं। डॉ. श्रीवास्तव ने वक्ता-श्रोता के अन्तस्सम्बन्धों की प्रकृति से संबोधन-शब्दावली और भाषेतर व्यवहार को भी नियंत्रित माना है।

युक्ति की सटीक अभिव्यक्ति एवं उसकी सही समझ के लिए उसकी व्याकरणिक संरचना के साथ उसके सामाजिक सन्दर्भों की जानकारी और समझ भी जरूरी होती है। 'तुम बैठो' जैसा वाक्य भिन्न सामाजिक सन्दर्भों में आज्ञापरक से अनुरोधपरक 'आप बैठिए' भी बन सकता है। लैकाफ (71) ने इस तथ्य का संकेत किया है कि एक ही संरचना द्वारा दो भिन्न सन्दर्भों में दो भिन्न सामाजिक अर्थ व्यंजित हो सकते हैं जिससे शिष्टाचार की विनम्र अभिव्यक्ति भी अशिष्ट रूप ले सकती है। इस तथ्य से व्याकरणिकता के साथ औचित्य एवं स्वीकार्यता के लक्षणों की सक्रियता का परिचय भी मिलता है और उनकी 'आनुपातिक क्रमिकता' की संकल्पना भी सामने आती है। हिन्दी का उदाहरण लें तो (1) 'बच्चों को बिगाड़ा नहीं जाता' जैसी कर्मवाक्य संरचना अधिक विनम्र है, जबकि (2) 'नहीं बिगाड़ते' जैसा वर्तमान क्रियारूप का प्रयोग अपेक्षाकृत कम विनम्र माना गया है। (3) 'नहीं बिगाड़ा करते' जैसा

क्रिया+करना वाला रूप और भी कम विनम्र बताया गया है। (4) 'नहीं बिगाड़ें' जैसा इच्छार्थक रूप अपेक्षाकृत और भी कम विनम्र है और (5) 'नहीं बिगाड़िए' जैसा आज्ञार्थक क्रियारूप सबसे कम विनम्र कहा गया है। डॉ. श्रीवास्तव ने यह संकेत दिया है कि 'आनुपातिक क्रमिकता' सदैव एक-सी नहीं रहती, उसका क्रम बदल सकता है।

ग्रॉस (51) भाषा-व्यवहार को भूमिका सम्बन्ध के प्रश्न से जोड़कर देखते हैं क्योंकि वार्तालाप के सदस्य वक्ता-श्रोता-सम्बन्धों को पहचानते हैं। वार्तालाप के क्षेत्र और सदस्य की दृष्टि से वार्तालाप के स्थान द्वारा विश्लेषण के घटकों (Components) का निश्चय होता है। (इर्विन ट्रिप, 64; गम्पर्ज़ 64(B) निम्नांकित आरेख से इसका परिचय मिलता है :

क्र. सं	क्षेत्र/Domain	वार्तालाप-समुदाय/ Interlocators	स्थान/Place	विषय/Topic
1.	परिवार	माता-पिता	घर	अच्छा बच्चा कैसे खेले?
2.	मित्रता	मित्र-मण्डली	उद्यान/समुद्रतट	खेल कैसे खेलें?
3.	धर्म	पादरी/धर्मगुरु	चर्च/पूजा-स्थल	अच्छे धार्मिक कैसे बनें?
4.	शिक्षा	अध्यापक	स्कूल/कॉलेज	समस्या कैसे हल करें?
5.	व्यवसाय	व्यवसाय प्रदाता	ऑफिस/कार्यक्षेत्र	प्रभावी ढंग से काम कैसे करें?

3.7 अनुवाद एवं सम्प्रेषण व्यवहार

भाषा और साहित्य का प्रगाढ़ सहसम्बन्ध लेखक और पाठक को एक सूत्र में जोड़कर सम्प्रेषण व्यापार को एक नया आयाम देता है। विद्वानों ने भी भाषा के उपादानों और प्रकार्यों की संगति साहित्यिक विधाओं से जोड़ी है। भाषा के त्रयात्मक प्रकार्यों का उल्लेख करते हुए व्हूलर ने संदेश को केन्द्र में स्थित मानकर उसके तीन ओर क्रमशः तथ्य/घटना के सन्दर्भ, वक्ता-प्रेषक और श्रोता ग्राहक की स्थिति बताते हुए उनके क्रमशः (बोधात्मक अनुभव और वैचारिक तत्व से सम्बद्ध) संकेतपरक प्रकार्य, (अनुरोध-अनुनय सम्बद्ध) भावात्मक प्रकार्य और (इच्छा, क्रियाशीलता सम्बद्ध) निदेशपरक क्रियात्मक प्रकार्य का उल्लेख किया है। इन तीनों की सहस्थिति ही संदेश का पूर्ण मन्तव्य स्पष्ट करती है। व्हूलर ने इनका सम्बन्ध क्रमशः तीन प्रधान साहित्यिक विधाओं – महाकाव्य, प्रगीत और नाटक से माना है। इलियट 'काव्यवाणी' (Three voices of Poetry) के रूप में कवि से जुड़े प्रगीत; श्रोता से जुड़े नाटक और तटस्थ विवरणकर्ता के रूप सन्दर्भ से जुड़े महाकाव्य का उल्लेख करते हैं। रोमन याकोबसन ने इनमें कोड और वक्ता के उच्चारित ध्वनि रूप को श्रोता तक पहुँचाने वाली सरणि (Channel) ये दो तत्व जोड़कर सम्प्रेषण व्यापार को पूर्णतः स्वायत्त तथा वक्ता-श्रोता के विचार/विनिमय के लिए एक समान बनाने का प्रयास किया है। सम्प्रेषण व्यापार की इस पूरी प्रक्रिया को निम्नलिखित आरेख स्पष्ट करता है :

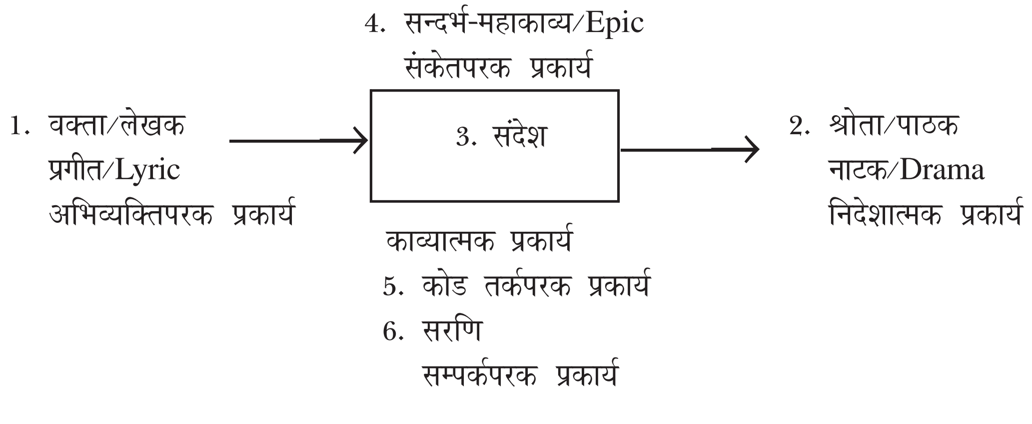

भाषा और साहित्य का वैश्विक सन्दर्भ अनुवाद की महत्वपूर्ण प्रयोजनीयता का परिचायक है। अनुवाद का सम्बन्ध भी सम्प्रेषण-व्यापार से निस्संदेह है क्योंकि यहाँ भी हम सममूल्यता के आधार पर दो भिन्न भाषाओं और संस्कृतियों से जुड़ी रचनाओं को पठनीय रूपों में प्रेषणीय बनाते हैं। वर्तमान सन्दर्भ में अनुवाद दो भाषाओं एवं संस्कृतियों के बीच सेतु का काम करता है और भाषा की तरह ही अपने प्रयोजन में बहुमुखी और बहुआयामी बन चुका है। भाषा-व्यवहार से सम्बद्ध यह अर्जित कौशल सिद्धान्त के साथ उसका प्रणालीगत प्रतिफलन भी है। अनुवाद के लिए प्रतीक सिद्धान्त की संकल्पना महत्वपूर्ण है। किसी अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त प्रतीक की अवधारणा त्रिवर्गीय है – (1) बाह्य जगत में स्थित इकाई यानी संकेत वस्तु, (2) प्रयोक्ता के मन में स्थित जातीय-मानसिक संकल्पना यानी संकेतार्थ और (3) संकेतार्थ से जुड़ी उसको अभिव्यक्त करने वाली इकाई यानी प्रतीक। प्रतीक वस्तुतः कथ्य और अभिव्यक्त की समन्वित इकाई है जिनके सम्बन्धों की प्रकृति यादृच्छिक होती है। एक ही कथ्य की अभिव्यक्ति दो भिन्न प्रतीकों से हो सकती है। इस मूलभूत संकल्पना का व्यवहार वस्तुतः अनुवाद के सिद्धान्त और प्रक्रिया का आधार है; निम्नांकित आरेख यह स्पष्ट करता है :

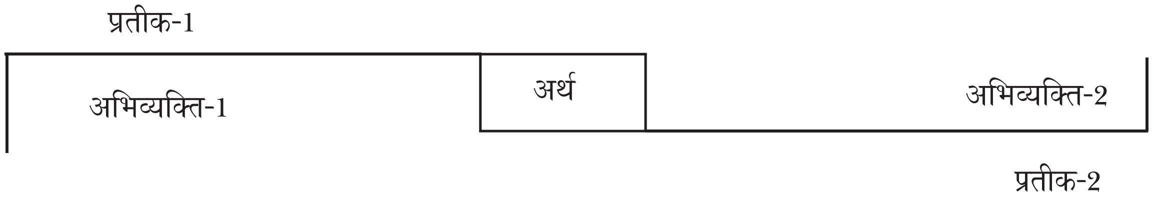

रोमन याकोबसन ने अनुवाद के तीन सन्दर्भों/रूपों का उल्लेख किया है : (1) **अन्वयान्तर** यानी अन्तः भाषिक अनुवाद जैसे चार्ल्स लैम्ब का शेक्सपियर का गद्य में अनुवाद अथवा प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी का हिन्दी और उर्दू रूप जहाँ मात्र लिपिभेद न होकर शब्द, वाक्य, रचना का वातावरण और संवेदना-विवृत्ति में भी अन्तर मिलता है, (2) **भाषान्तर** यानी-अन्तर्भाषिक अनुवाद जहाँ दो प्रतीक दो भिन्न भाषाओं के दो प्रतीक मिलते हैं; यही अनुवाद का वास्तविक क्षेत्र है जहाँ अनुवाद की दोहरी भूमिका स्रोत भाषा के पाठक-विश्लेषण और लक्ष्य भाषा के लेखकीय पुनर्विन्यास के सन्दर्भ में देखी जा सकती है। (3) **प्रतीकान्तर** यानी अन्तर प्रतीकात्मक अनुवाद जहाँ किसी भाषा के प्रतीक-1 किसी भाषेतर व्यवस्था के प्रतीक-2 के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जैसे किसी साहित्यिक रचना की फिल्म, नाटक अथवा नृत्य-नाटिका के रूप में प्रस्तुति।

अनुवाद के सैद्धान्तिक विवेचन में पाठधर्मी अनुवाद पाठ को एक स्वायत्त रचनिष्ठ इकाई माना जाता है और अर्थ के प्रत्यारोपण द्वारा प्रयोजन और प्रकार्य के आधार पर अनूदित पाठ-2 की प्रतिस्थापना की जाती है। इसके विपरीत प्रभावधर्मी अनुवाद पाठक पर पड़े पाठ के प्रभाव को महत्व देता है, जिसमें पाठ के साथ (Pragmatics) का योगदान भी रहता है जिससे अनुवाद मूल पाठ-1 के सहपाठ 2 के रूप में प्रस्तुत होता है। अनुवाद प्रक्रिया के प्रथम चरण में भाषा और विषयवस्तु की दो दृष्टि से पाठ का विश्लेषण कर भाषिक रूप और संकेतपरक प्रकार्य के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। द्वितीय चरण में अर्थगम इकाइयों के अन्तरण के लिए अर्थ-क्षेत्र के सिद्धान्तानुरूप अर्थ वैविध्य को पकड़ते हैं और फिर उसका पूर्ण, विश्लेषणात्मक (जेठ=पति का बड़ा भाई), संश्लेषणात्मक (भाई-बहन=sibling) अथवा संरचनात्मक रूप में पुनर्विन्यास किया जाता है। पुनर्गठन के अंतिम चरण में सममूल्य रूपों के द्वारा अभिव्यक्ति की सम्प्रेषणीयता से सम्बद्ध है। यहां भाषा के साथ विधा आदि सभी पर ध्यान दिया जाता है। उदाहरणार्थ- 'मेरी औरत' (प्रेमचंद)= 'Your Mother' (मलिक), 'My wife' (रूबिन)। अनुप्रयुक्त भाषिक प्रक्रिया होने से अनुवाद वस्तुतः अपने पाठक से जुड़ा रहता है जहाँ अर्थ-सम्प्रेषण महत्वपूर्ण होता है। अतः लक्ष्यभाषा की प्रकृति के अनुरूप अनुवाद के सम्प्रेषणीय और युगधर्मी होने पर बल रहता है।

अनुवाद का लक्ष्य सममूल्यता के आधार पर प्राप्त कथ्य की सम्प्रेषणीयता है, भाषाओं के आधुनिकीकरण का प्रश्न भाषा नियोजन के क्षेत्र विस्तार के साथ भारतीय भाषाओं को प्रगतिपरक संस्कृति से जोड़ने का भी है। इसके लिए एक ओर अंग्रेजी के प्रभुत्व एवं व्यामोह से मुक्ति की और दूसरी ओर शब्दकोशीय शब्दों और निर्माण प्रक्रिया की

आधारभूत प्रकृतिगत भिन्नता को समझना जरूरी है। अनुवाद-प्रक्रिया के आधार पर निर्मित शब्दों का भाषिक रूपान्तरण की अपेक्षा कथ्य की बोधगम्यता और सम्प्रेषणीयता पर आधारित होने जरूरी हैं। भाषा की प्रकृति, संस्कार एवं जातीयता की पहचान की शक्ति के साथ भाषा-विकास की जानकारी भी इसके लिए आवश्यक है। यह भी ध्यान में रखना होगा कि भाषा के आधुनिकीकरण का सम्बन्ध सामाजिक चिन्तन से जोड़ने पर एक निश्चित प्रक्रिया, विचार तंत्र की संकल्पना भी साथ रहती है। भारतीय भाषाओं की धार्मिक-सौन्दर्य-चेतना वृत्ति से जुड़ी अभिव्यक्तिपरक संस्कृति को ज्ञानात्मक और आर्थिक वृत्ति वाली प्रगतिपरक संस्कृति में ढालने की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया वस्तुतः यांत्रिकता की अपेक्षा सृजनात्मकता की मांग करती है (डा. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव), भाषा के प्रयोग-विस्तार और अभिव्यक्ति-प्रसार से जुड़ा यह भाषा विकास वर्तमान सन्दर्भ में आवश्यक है। भारतीय भाषा-समाज प्रयोजनसिद्ध भाषा-भेदों और भाषा-व्यवहार को सहजभाव से स्वीकार करता है, बोली, स्थानीय/क्षेत्रीय/क्षेत्रीय बोली, हिन्दी और अंग्रेजी के प्रयोग के निर्धारित क्षेत्रों में अधिक्रमित प्रयोग इसका प्रमाण हैं। ये सभी रूप भारतीय समाज की सम्प्रेषण-व्यवस्था में भाषा-परिवर्तन (Change) और भाषा मिश्रण (Mixing) के आधार पर व्यावहारिक बनते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सामर्थ्य या दक्षता का सवाल प्रयोक्ता के साथ जुड़ा होता है। भाषा के साथ नहीं, क्योंकि भाषा तो हर चुनौती का सामना करके रास्ता निकाल लेती है। किसी भाषा रूप का चयन क्यों किया गया है, उससे हमें क्या अतिरिक्त सूचना मिलती है, ये प्रश्न महत्वपूर्ण हैं; भाषा-व्यवहार का विषय क्षेत्र इसकी समझ में सहायक सिद्ध होता है। आमने-सामने वार्तालाप में व्यक्तिगत व्यवहार का जो रूप मिलता है अन्तःव्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक नियमों और अपेक्षाओं से जुड़ा रहता है। व्यक्तिगत व्यवहार और सामाजिक पैटर्न की पहचान के अलग होने के बाद भी दोनों में परस्पर सम्बन्ध देखा जा सकता है।

अनुवाद की संकल्पना भी भाषा को सम्प्रेषण का अन्यतम उदाहरण मानती है। भाषा का सम्प्रेषण से अनिवार्य सम्बन्ध ही उसे बातचीत का माध्यम बनाता है। भाषा अध्ययन का व्यापक एवं पूर्ण सन्दर्भ-वस्तुतः (समाज) भाषा विज्ञान की अवधारणा से जुड़ा है, समग्रता में भाषा अध्ययन का लक्ष्य उसके सामने रहता है। प्रयोजन और प्रकार्य पर दृष्टि केन्द्रित रहने से यहां सम्प्रेषण-क्षमता पर बल दिया गया है। अपनी व्यवस्था और व्यवहार की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया से ही भाषा जीवन्त बनती है, निजी सन्दर्भ, श्रोता की भूमिका, देश-काल स्थिति आदि से नियंत्रित भाषा-व्यवहार इसी से नव प्रवर्तनकारी होता है और मानव-व्यवहार से सम्बद्ध परम्पराओं की सार्थकता उसके प्रकार्य एवं प्रयोजन में निहित रहती हैं। अनुवाद की प्रक्रिया भी अर्थ-सम्प्रेषण की समस्या से जुड़ी है जिसके लिए पहले अर्थ-बोधन जरूरी है; इससे अनुवादक की द्विभाषिक भूमिका के महत्व का परिचय मिलता है। अर्थ पाठ सापेक्ष होता है। इसलिए वह विषय और प्रसंग के अनुरूप बदलता है, जिसमें श्रोता/पाठक की अपनी समझ की गति भी सक्रिय रहती है। अनूदितकृति के एकाधिक अनुवादों से तुलनात्मक अध्ययन से इसका प्रमाण हमें मिलता है। स्पष्ट है कि भाषा अध्ययन की समग्रता की केन्द्रीय धुरी सम्प्रेषण है जो मनुष्य के सम्प्रेषणपरक भाषिक-व्यवहार को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखे जाने की माँग करती है।

3.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने भाषा और सम्प्रेषण व्यवहार की पूरी प्रक्रिया को विस्तार से समझा। भाषा सम्प्रेषण की महत्वपूर्ण इकाई है। भाषा के अभाव में सम्प्रेषण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। बदलते समय के साथ तकनीकी के विकास ने सम्प्रेषण की इस प्रक्रिया को और अधिक सक्षम बनाया है जिसमें भाषा की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

इकाई में दिए गए बोध प्रश्नों के माध्यम से आप प्रस्तुत इकाई में प्राप्त अपने ज्ञान का पुनः मूल्यांकन कर सकते हैं। अगली इकाई में हम बहुसांस्कृतिकता के विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) भाषा की प्रकृति और प्रयोजन से आपका क्या तात्पर्य है? उदाहरण सहित समझाइए।

2) भाषा सम्प्रेषण के तीन आधारभूत तत्व कौन-कौन से हैं? विस्तार से समझाइए।

3) रेखीय और चक्रीय सम्प्रेषण सिद्धान्तों को संक्षेप में समझाइए।

4) ब्लूमफील्ड और सस्यूर द्वारा सुझाए गए सम्प्रेषण के मॉडलों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

5) 'सम्प्रेषण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसका अन्यतम साधन भाषा है।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? तर्क दीजिए।

6) सम्प्रेषण व्यवहार में अनुवाद की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- कुमार, सुरेश, 1977ः *शैली विज्ञान,* दिल्ली, मैकमिलन।
- कुमार, सुरेश, 1978ः *शैली विज्ञान और प्रेमचंद की भाषा,* दिल्ली, मैकमिलन।
- कुमार, सुरेश एवं श्रीवास्तव, 1976ः *शैली और शैली विज्ञान,* दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।
- गोस्वामी, कृष्ण कुमार, 1975ः *हिन्दी की सामाजिक शैलियाँ,* दिल्ली, भाषा केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप, 1964ः *भाषा और संवेदना,* वाराणसी, भारतीय ज्ञानपीठ।
- श्रीवास्तव रमानाथ सहाय, 1976ः *हिन्दी का सामाजिक सन्दर्भ,* आगरा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, 1975 -।ः *प्रयोजनमूलक हिन्दी,* आगरा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, 1975-Bः *बहुभाषिकता और हिन्दी समाज,* भाषा, दिशा हिन्दी सम्मेलन अंक, दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, 1980ः *संरचानात्मक शैली विज्ञान,* दिल्ली, आलेख प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, 1992ः *भाषायी अस्मिता और हिन्दी,* दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, 1994ः *हिन्दी भाषा का समाज शास्त्र,* नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, 1997ः *भाषा विज्ञान : सैद्धांतिक चिन्तन,* नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, 2000ः *अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान : सिद्धान्त एवं प्रयोग,* नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, 2004ः *साहित्य का भाषिक चिन्तन,* नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन।
- श्रीवास्तव, कृ. कृ. गोस्वामी, 1985ः *अनुवाद, सिद्धान्त और समस्याएँ,* दिल्ली, आलेख प्रकाशन।